१५२
कहानी

२०१८
११.२.१८

११३ ६८

एक लड़की एक जाम

१५२
कहानी

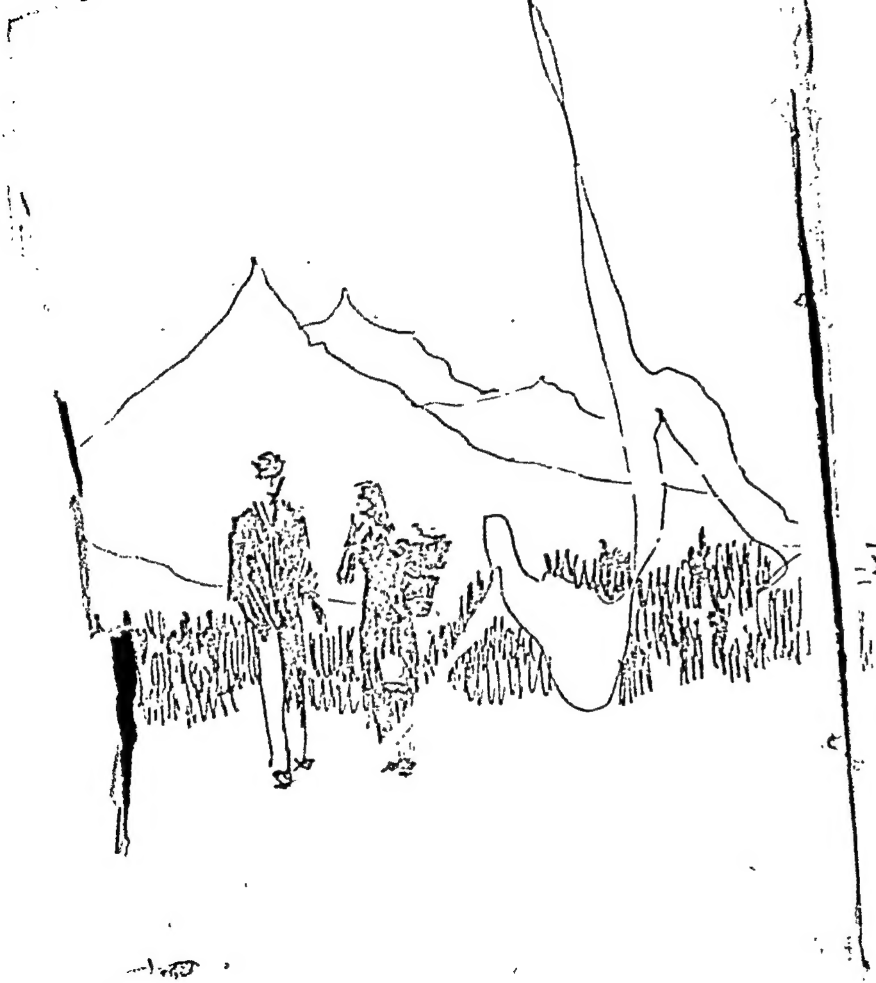

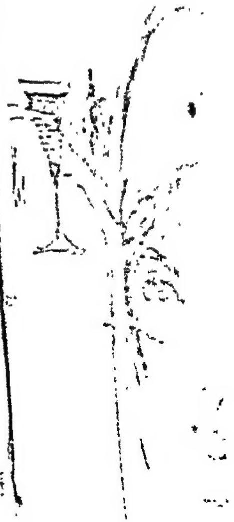

१५२
कहानी

अमृता प्रीतम

७०५८
११.३.६८

एक लड़की एक जाम

एक लड़की : एक जाम

प्रसिद्ध चित्रकार सुमेश नंदा की यह कहानी असल में मैंने पिछले बरस लिखी थी। दिल्ली में उनके चित्रों की प्रदर्शनी लगी थी। हफ्ते-भर रोज़, किसी-न-किसी पत्र में सुमेश नंदा की कला की आलोचना होती रही। बड़े समझदार लोग यह प्रशंसात्मक आलोचना करते थे। मुझे चित्रकला के संबंध में सिर्फ उतनी ही जानकारी है, जितनी एक कला-विधान से अनजान पर एक सूक्ष्म अहसास वाले आदमी को होनी है। ''और प्रदर्शनी के कई चित्रों की खामोश तारीफ़ करती मेरी आँखें सुमेश नंदा के दो चित्रों के सामने जमकर रह गई थीं। एक चित्र के नीचे लिखा हुआ था : 'ढाई पत्ती : डेढ़ पत्ती' और दूसरे चित्र के नीचे लिखा हुआ था 'एक लड़की : एक जाम।'

पहला चित्र चाय के बाग़ में चाय की पत्तियाँ चुनती हुई पहाड़ी लड़कियों का था, और इस चित्र का भाव चित्रकार ने ऐसे समझाया था :

चाय के सारे पौधे की अन्तिम कोंपल डेढ़ पत्ती होती है—एक पूरी बड़ी पत्ती और एक उसके साथ जुड़ी हुई छोटी-सी बच्चा पत्ती। उस डेढ़ पत्ती की चमक ही अलग होती है। उस अंतिम कोंपल से नीचे ढाई पत्तियाँ उगती हैं, बड़ी नरम। और फिर उनसे नीचे मोटी पत्तियों की कई शाखें। ढाई पत्ती और डेढ़ पत्ती अलग तोड़कर रख लेते हैं। इन पत्तियों से जो चाय बनती है, वह बड़ी महँगी बिकती है। बाकी हम लोग जो चाय खरीदते हैं, वह नीचे की सस्ती, मोटी पत्तियों की चाय होती है। एक भारी पौधे से सिर्फ चार मोटी पत्तियाँ झड़ती हैं, सारे

बाग में से आखिर कितनी पत्तियाँ बचेंगी? यह चाय बड़ी महँगी बिकती है, साढ़े चार पौंड से भी महँगी।

सुमेश नंदा के इस चित्र में जो सबसे पहली लड़की थी, उसका मुँह सामने से भी थोड़ा दिखाई पड़ता था। हमारे सामने ज़्यादा उसकी पीठ थी, फिर भी उसके सौंदर्य की कैसी छवि दिखती थी! लगता था कि सारी पहाड़ी लड़कियाँ जैसे चाय का एक पौधा हों—बिखरा-फैला एक पौधा और यह लड़की, इस पार खड़ी हुई लड़की, सारे पौधे की अंतिम कोंपल हो—ऐंठ पत्ती की चोटी, हरी, चमकदार कोमल।······पर मैंने अपनी बात अपने पास ही रखी और चित्रकार से कुछ नहीं कहा।

दूसरा चित्र, जिसके नीचे लिखा था, 'एक लड़की : एक जाम,' एक पहाड़ी लड़की का मनोरम सौन्दर्य था, जैसे लोग कहते हैं, यह चित्र तो मुँह से बोलता है। वाकई ऐसा मुँह से बोलने वाला चित्र मैंने पहले कभी नहीं देखा था। उसके सम्बन्ध में चित्रकार ने कुछ नहीं कहा था। मैंने ही कहा, "ऐसा जाम पीने के लिए तो एक उम्र भी थोड़ी है।"

चित्रकार ने चौंककर मेरी ओर देखा। कोई साठ साल की उम्र होगी उनकी। जाने कौनसी जवानी पलटकर चित्रकार की आँखों में आ गई। बोले, "इस चित्र की यह व्याख्या मैंने और किसी से नहीं सुनी। यह बिलकुल वही बात है जो मैंने कहनी चाही थी। और तो और, मेरे मित्रों ने भी इसका यह अर्थ नहीं लगाया था। मेरे साथ कइयों ने मज़ाक किये, 'एक लड़की : एक जाम'··· और जाम नित नया होता है।"

जाने उस चित्र में कौनसा बुलावा था! हफ्ते-भर वह प्रदर्शनी लगी रही, और मैं उस हफ्ते में तीन बार प्रदर्शनी देखने गयी थी—असल में सारे चित्र नहीं, एक चित्र, 'एक लड़की : एक जाम!' कला-मर्मज्ञ होने के नाते नहीं, सिर्फ़ मन में उठते हुए कुछ भावों के आधार पर मैंने सुमेश नंदा की उस कृति के सम्बन्ध में एक सादी-सी बात कही थी। और उस सादी-सी बात ने चित्रकार का सारा मन खोलकर उसके होंठों पर ला दिया था।

"कांगड़ा-कलम को जांचता-परखता मैं कुछ दिन कांगड़े के एक गांव में रहा था। पालमपुर चाय के बाग अधिक दूर पर नहीं थे। यह चित्र, 'ढाई पत्ती, डेढ़ पत्ती' मैंने वहीं बनाया था। यह लड़की, जो इस ओर खड़ी हुई है, ध्यान से देखना, वही लड़की है, जिसे दूसरे चित्र में मैंने लिखा है 'एक लड़की - एक आम'।"

"यह तो मैंने आपके कहने से पहले नहीं पहचाना था। पर पहले दिन ही यह चित्र देखकर मुझे लगा था, जैसे सारी लड़कियां चाय का एक पौधा हों और यह लड़की उस पौधे की सबसे ऊपर की कोंपल हो— छोटी, हरी और चमकदार!"

सुमेश मदान की बूढ़ी आंखों में फिर एक जवान चमक आई और उन्होंने कहा, "अब तो मैं और भी विश्वास से भर गया हूं। तुमने यह बात अपने अधिकार से मुझसे निकलवा ली है। तुमने मेरे दोनों चित्रों के जैसे अर्थ दिये हैं, मेरी कहानी सुनने का तुम्हारा अधिकार हो जाता है। पहले किसी ने मुझसे यह बात नहीं सुनी।

"मैंने इस लड़की का नाम टूणी रखा था। उसका नाम पूछने का भी कष्ट मैंने नहीं किया था। इसी ने, चाय की पत्तियां चुनने वाली इसी लड़की ने, ढाई पत्ती-डेढ़ पत्ती वाली बात मुझे सुनाई थी और मैंने उससे कहा, 'तू भी तो लड़कियों के सारे पौधे की ऊपर की पत्ती है, यही महंगी!—जाने यह चाय कौन पियेगा!'

"बरसात के दिन थे। एक नाला ऐसे बढ़ा कि साथ वाले गांवों को जोड़ने वाली सड़क उसमें डूब गई। गांवों की आवाजाही बन्द हो गई। कोई तीन दिन के बाद सड़क का जिस्म दिखाई दिया। इस तरफ से मैं जा रहा था, उस पार से वह टूणी आ रही थी। मैंने कहा, 'आखिर पानी रुक ही गया। एक बार को तो ऐसे लगता था जैसे इस पानी का बहाव सूखेगा ही नहीं।'

"पता है कि टूणी ने क्या कहा? कहने लगी, 'बाबू, यह भी कोई आदमी के आंसू हैं जो कभी न सूखें।' मैं टूणी के मुंह की ओर देखता रह गया। उसका मुंह सुन्दर था, पर ऐसी बात भी कह सकता था, मैं

यह नहीं सोच सकता था। कुछ ऐसी बात मैंने पहले एक बंगाली उपन्यास में पढ़ी थी, पर टूणी ने तो कभी बंगाली उपन्यास नहीं पढ़ा था। जाने, सारे देशों के दुःखों की एक ही भाषा होती है।

"मैं उसके घर गया। उसका बाप था, माँ थी, दो भाई थे और एक भाभी। मैं उसके घर का भीतर-बाहर टटोलता रहा। वह कौन-सा दुःख था उसके मन में, जहाँ से उसकी यह बात उगी थी? और मैंने उसके दुःख का बीज ढूँढ़ लिया। उसके बापू के सिर पर काफ़ी कर्ज़ा था। इस ओर लड़कियों की कीमत पड़ती है—तीन-चार सौ से लेकर हज़ार तक। और कर्ज़ा देने वाले ने टूणी को पन्द्रह सौ रुपये के बदले उसके बापू से माँग लिया था। और टूणी कहती थी, 'वह आदमी, आदमी नहीं, एक देव-दानव है। मुझे सपने में भी उससे डर लगता है।'

"एक दिन मैंने टूणी को अलग बिठाकर पूछा, 'अगर मैं तेरे भय की रस्सी खोल दूं?'

'वह कैसे, बाबू?'

'मैं पंद्रह सौ रुपये भर देता हूँ। तू अपने बापू से कह, वह सगाई तोड़ दे।'

"कोई और लड़की होती तो शायद मेरे पैरों को हाथ लगाती। पर उस टूणी ने सीधे मेरे दिल पर हाथ डाल दिया। कहने लगी, 'और बाबू, तू मेरे साथ ब्याह करेगा?'

"कभी मैंने कहा था, 'टूणी, तू चाय के पौधे की सबसे कीमती पत्ती है, यह चाय कौन पियेगा?' और आज टूणी ने अपने प्राणों की पत्ती से मेरे लिए वह चाय बना दी थी। पर मैंने यह बात पहले न सोची थी, न कही थी। मैंने उसे समझाना चाहा कि मेरा वह मतलब नहीं था। पर उसके कपड़ों पर तो जैसे किसी ने चिंगारी फेंक दी हो।

"कहने लगी, 'अरे बाबू, मैं कोई भीख माँगने वाली हूँ?'

"मेरी ज़िन्दगी कोई अच्छी नहीं थी। कितनी लड़कियाँ आयी थीं और फिर अपनी राह चल दी थीं। मैं ज़िन्दगी की एक छोटी-मोटी सड़क पर ही उनके साथ चल पाया था, कोई लम्बा रास्ता मैंने कभी

नहीं पकड़ा। और अब मेरा यह विश्वास ही खो गया था कि मैं कभी भी किसी के साथ जिन्दगी का सारा सफर तय कर सकूँगा।

"'मेरी जिन्दगी में बड़ी तपिश है। तू जी नहीं सकेगी, यह मुँह जल जाएगा।' और मैंने लाड़ से टूणी का दिल रखने के लिए उसके होंठों को अपनी उँगली लगा दी।

"'फूंक-फूंककर पी लूँगी बाबू,' यह-जैसी बात मैंने सुनी, और वह-जैसा टूणी का मुँह मैंने देखा। मुझे लगा, यही टूणी है, यही टूणी, जिसके साथ मैं जिन्दगी का सारा रास्ता चल सकता हूँ।

"अपने और उसके फैसले को मैंने चाँदी के रुपये की भाँति फिर ठनकाकर देखा। मैंने कहा, 'तुझे पता नहीं, पहले कितनी लड़कियाँ मेरी जिन्दगी में आ चुकी हैं। हर लड़की को मैंने शराब के एक जाम की तरह पिया, और फिर एक जाम के बाद मैंने दूसरा जाम भर लिया।'

"टूणी हँस दी। कहने लगी, 'क्यों बाबू, तेरी प्यास नहीं मिटती?'

"मैंने अभी कुछ भी नहीं कहा था कि टूणी फिर बोली, 'अच्छा, एक वादा कर ले, बाबू! जब तक मेरे दिल का प्याला खत्म न हो जाए, तू उतनी देर किसी दूसरे प्याले को मुँह न लगाएगा।'

"मुझे लगा कि मैंने आज तक जितने भी जाम पिये थे, वे जिस्मों के जाम थे, बिलकुल जिस्मों के जाम! उनमें दिल का जाम कोई नहीं था। अगर होता तो शायद जब तक उस प्याले की शराब खत्म न हो जाती, मैं दूसरे प्याले को मुँह न लगा सकता।' और शायद दिल के प्याले में से शराब कभी खत्म नहीं होती।

"मैंने अपने फैसले का रुपया ठनकाकर देख लिया। टूणी का फैसला तो था ही खरा! टूणी के माँ-बाप ने हम दोनों का फैसला मान लिया। और मैं रुपयों का प्रबन्ध करने के लिए शहर आ गया।"

मुकेश नन्दा ने जब अपनी यह कहानी आरम्भ की थी, उस समय आठ बजने वाले थे। आठ बजे प्रदर्शनी खत्म हो जाती थी, इसलिए कमरे में से चित्र देखनेवाले लोग लौट गए थे, और नया कोई आनेवाला नहीं था। कहानी अभी खत्म नहीं हुई थी। पर कहानी को यहाँ तक

पहुँचाकर चित्रकार ने स्वयं ही अपनी खामोशी से उस कहानी को बीच में रोक दिया।

मैं चित्रकार को देखती रही, रुकी हुई कहानी को देखती रही। चित्रकार जैसे एक समाधि में डूब गया था।

चपरासी प्रदर्शनी के कमरे का दरवाज़ा बन्द करने के लिए बाहर दर्शकों के पास आ गया था। मैंने हाथ के इशारे से उसे खामोश रहने के लिए कहा और इन्तज़ार करने लगी, शायद यह रुकी हुई कहानी कोई क़दम उठा ले।

चित्रकार की बन्द आँखों से आँसू टपकने लगे। शायद उसी पानी ने कहानी को बहाव में डाल दिया।

"मैं जब रुपये लेकर वापस गया, किस्मत ने मेरा जाम मेरे हाथों छीन लिया था।"

"क्या बाप ने टूणी का जबरदस्ती ब्याह कर दिया था?" मैंने काँपकर पूछा।

"इससे भी भयंकर बात!···टूणी जिसे देव-दानव कहती थी, उस बूढ़े साहूकार ने अपना सौदा टूटने की खबर सुन ली थी और उसने चोरी से किसी के हाथों टूणी को जहर पिलवा दिया था···।

"टूणी की चिता में थोड़ी-सी सेंक बाक़ी थी, थोड़ी-सी आग। मैंने उस आग को साक्षी बनाया और चिता के गिर्द घूमकर जैसे फेरे ले लिए।"

शायद तीस-पैंतीस बरस की उम्र में चित्रकार ने वे फेरे लिये होंगे। अगले तीस बरस उसने कैसे उन फेरों की लाज रखी होगी, यह उसके साठवें-बासठवें बरस से भी पता चलता था, कोई पूछने की बात नहीं थी। मुझे लगा, सारी बीसवीं सदी उसे प्रणाम कर रही है।

धीरे-धीरे चित्रकार के होंठ फड़के, "टूणी ने कहा था, 'एक वादा कर ले, बाबू! जब तक मेरे दिल का प्याला ख़त्म न हो जाए, तू उतनी देर किसी दूसरे प्याले को मुँह न लगाएगा।'···वह सामने खड़ी हुई टूणी गवाह है, मैंने किसी दूसरे प्याले को मुंह नहीं लगाया।"

सामने छूरी का चित्र था। छूरी, एक मकड़ी, एक आम!...मौत ने चित्रकार के हाथों से वह आम छीन लिया, पर कोई मौत उसकी कल्पना से वह आम न छीन सकी। और चित्रकार की सारी उम्र दौड़ते हुए बीत गई, उस आम की तलाश खत्म न हुई।

सचमुच एक भ्रम हो पाया? मैंने सुकेश नन्दा के मुँह से यह कहानी सुनने वालों से सुनी थी और फिर उनके हाथ उनके हाथों से लिखी थी, पर तब उन्होंने मुझे छापने की आज्ञा नहीं दी थी। तब मैंने कहानी में उनका एक कल्पित नाम लिखा था। उन्होंने कहा था, 'जब तक मेरी उम्र का अन्तिम दिन नहीं आता, मेरा कोई दावा नहीं बनता। इस आम को खोते हुए मुझे उम्र का अन्तिम दिन भी खत्म कर लेने दो, फिर इस कहानी को छापना, अभी नहीं। और तब, देखना, मेरा नाम भी बदलकर न लिखना।'

और अब, पिछले हफ्ते, आपने पत्रों में पढ़ा होगा, प्रसिद्ध चित्रकार सुकेश नन्दा की मृत्यु हो गई। चित्रकार की कला के सम्बन्ध में पत्रों में कई कालम भरे हुए थे और एक-दो पत्रों में यह भी लिखा था, 'जिस कमरे में चित्रकार ने अन्तिम साँस ली, उस कमरे में उनकी बनायी हुई एक ही तस्वीर टंगी हुई थी, 'एक मकड़ी, एक आम'।

उस फोटो को, आम कहा था—आज चित्रकार का यह दावा सत्य हो गया है। इस कहानी में आज मैंने कुछ नहीं बदला, सिर्फ उनका असली नाम लिख दिया है, उन्हीं के कहने के अनुसार।

करमा वाली

बड़ी ही सुन्दर तन्दूर की रोटी थी, पर सब्ज़ी की तरी से छुआ कौर मुंह को नहीं लगाया जाता था।

"इतनी मिर्चें !…" मैं और मेरे दोनों बच्चे सी-सी कर उठे थे।

"यहां बीबी जाटों की आवाजाही बहुत है। शराब की दुकान भी यहां कोसों में एक ही है। जाट जब घूंट पी लेते हैं, फिर अच्छी मसालेदार सब्ज़ी मांगते हैं," तन्दूर वाला कह रहा था।

"हां,……जाट…… शराब……"

"हां बीबी, घूंट शराब का तो सब ही पीते हैं, पर जब किसी आदमी का खून करके आयें, तब ज़रा ज्यादा ही पी जाते हैं।"

"यहां ऐसी घटनाएं……"

"अभी परसों-तरसों तो कोई पांच-छः आ गए। एक आदमी मार आए थे। खूब चढ़ा रखी थी। लगे शरारतें करने। वह देखो, मेरी तीन कुरसियां टूटी पड़ी हैं। परमात्मा भला करे पुलिसवालों का, वे जल्दी पकड़कर ले गए उन्हें, नहीं तो मेरे चूल्हे की ईंटें भी न मिलतीं…पर कमाई भी तो हम उन्हीं की खाते हैं……"

कौशल्या नदी देखने की सनक मुझे उस दिन चण्डीगढ़ से फिर एक गांव में ले गई थी। पर मिर्चों से चली बात शराब तक पहुंच गई थी और शराब से खूनखराबे तक। मैं उस गांव से जल्दी-जल्दी बच्चों को लेकर लौटने लगी थी।

तन्दूर अच्छा लिपा-पुता और अन्दर से खुला था। और भीतर की ओर एक तरफ़ कोई छः-सात खाली बोरियां तानकर जो परदा कर रखा

था, उसके पीछे पड़ी तीन खाटों के पाए बताते थे कि तन्दूर वाले के बाल-बच्चे और औरत भी वहीं रहते थे।···मुझे लगा, कोई इतना बड़ा खतरा नहीं था। वहाँ पर औरत की रिहाइश थी, इज्जत की रिहाइश थी।

किसी औरत ने टाट का कोना मोड़ा। बाहर की ओर झांककर देखा, और फिर बाहर आकर मेरे पास आकर खड़ी हो गई।

"बीबी, तूने मुझे पहचाना नहीं ?"

"नहीं तो···"

वह एक सादी-सी जवान औरत थी। मैं उसके मुंह की ओर देखती रही, पर मुझे कोई भूली-बिसरी बात भी याद नहीं आई।

"मैंने तो तुझे पहचान लिया है, बीबी ! पिछले साल, सच, उससे भी पिछले साल तू यहाँ आयी थी न ?"

"आयी तो थी।"

"सामने मैदान में एक बरात उतरी थी।"

"हाँ, मुझे यह याद है।"

"वहाँ तूने मुझे डोली में एक रुपया दिया था।"

बात याद आई। दो साल पहले मैं चण्डीगढ़ गयी थी। वहाँ पर नया रेडियो स्टेशन खुलना था। और पहले दिन के समागम के लिए, मेरे दिल्ली के दफ्तर ने मुझे वहाँ एक कविता पढ़ने के लिए भेजा था। मोहनसिंह तथा एक हिन्दी के कवि जालन्धर स्टेशन की तरफ से आये थे। समागम जल्दी ही खत्म हो गया था और हम तीन-चार लेखक कौशल्या नदी देखने के लिए चण्डीगढ़ से इस गाँव में आये थे।

नदी कोई मील-डेढ़ मील ढलान पर थी, और वापसी चढ़ाई चढ़ते हुए हम सब चाय के एक-एक गरम प्याले को तरस गए थे। सबसे साफ और खुली दुकान यही लगी थी। यहीं से चाय का एक-एक गरम प्याला पिया था। उस दिन इस दुकान पर पकते हुए मांस और तन्दूरी रोटियों के साथ-साथ मिठाई भी बनाई थी। तन्दूर वाला कह रहा था, "आज यहाँ से मेरी भाजी की डोली गुज़रेगी। मेरा भी तो कुछ करना बनता है न···"

और फिर सामने मैदान में डोली उतरी। डोली किसी पिछले गांव से आयी थी। उसे आगे जाना था। रास्ते में मामा ने स्वागत किया था।

"विवाह भी अजीब चीज है, आते वक्त कैसे रंग बांधता है, और जाते समय……" हममें से एक ने कहा था। और चाय के घूंटों के साथ रंग की फिलासफी भी गरम होती गई थी।

"क्यों, मैं नयी दुल्हन का मुंह देख आऊं! देखूं तो भला उसके मुंह पर आज कैसा रंग है!……" मुझे याद है, मैंने कहा था और पहले ही से मेरे साथियों ने जवाब दिया था, "हमें तो कोई डोली के पास नहीं जाने देगा, तुम ही देख आओ…पर खाली हाथों न देखना…"

मैं एक मुस्कराहट लिये डोली के पास चली गई थी। डोली का पर्दा एक तरफ़ से उठा हुआ था। मैंने पास में बैठी नाइन से पूछा था, "मैं दुल्हन का मुंह देख लूं?"

"बीबीजी, सदके देखो…हमारी लड़की तो हाथ लगाए मैली होती है…"

और सचमुच लड़की की शृङ्गारपुरी नथ में जो मुस्कराहट का मोती चमक रहा था, उसका रंग झेलना कोई आसान काम नहीं था।

मैंने एक रुपया उसकी हथेली पर रखा। और जब लौटी, तो मेरे साथी कह रहे थे, "क्षण-भर पहले जब तुमने कविता पढ़ी थी, कॉलिज की कितनी लड़कियों ने रुपए-रुपए के नोटों पर तुम्हारे हस्ताक्षर करवाए थे! उस बेचारी को क्या मालूम होगा कि वह रुपया उसे किसने दिया था…कहीं जानती होती, हस्ताक्षर ही करवा लेती…।"

दो साल पहले की बात थी। मुझे पूरी-की-पूरी याद आ गई।

"तू…वह डोली वाली लड़की?"

"हां बीबी!"

जाने किस घटना ने उसे दो बरसों में लड़की से औरत बना दिया था। घटना के चिह्न उसके मुंह पर से दृष्टिगोचर होते थे, पर फिर भी मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मैं उससे कैसे पूछूं?

"बीबी, मैंने तेरी तस्वीर अख़बार में देखी थी, एक बार नहीं, दो बार। यहाँ भी कितने ही लोग आते हैं, जिनके पास अख़बार होता है, कई तो रोटी खाते-खाते यहीं पर छोड़ जाते हैं।"

"सच, और फिर तूने पहचान ली थी ?"

"मैंने उसी वक्त पहचान ली थी। पर बीबी, ये तेरी तस्वीर क्यों छापते हैं ?"

मुझसे जल्दी कोई जवाब न बन पड़ा। ऐसा सवाल पहले कभी किसी ने मुझसे नहीं किया था। कुछ लजाते हुए मैंने कहा, "मैं कविताएँ-कहानियाँ लिखती हूँ न।"

"कहानियाँ ? बीबी, क्या वे कहानियाँ सच्ची होती हैं, या झूठी ?"

"कहानियाँ तो सच्ची होती हैं, वैसे नाम झूठे होते हैं, ताकि पहचानी न जाए।"

"तू मेरी कहानी भी लिख सकती है, बीबी ?"

"अगर तू कहे, तो मैं ज़रूर लिखूँगी।"

"मेरा नाम करमांवाली (सौभाग्यशालिनी) है। मेरा तो चाहे नाम भी झूठा न लिखना। मैं कोई झूठ थोड़े ही बोलूँगी, मैं तो सच कहती हूँ पर मेरी कोई सुने भी तो। कोई नहीं सुनता।"

वह मेरा हाथ पकड़कर मुझे टाट के पीछे पड़ी खाट पर ले गई।

"जब मेरी शादी होनी थी न, मेरी ससुराल से दो जनी मेरा नाप लेने आयीं। उनमें से एक लड़की मेरी उम्र की थी—बिलकुल मेरे जितनी। वह किसी दूर के रिश्ते से मेरी ननद लगती थी। मेरी सलवार, कमीज़ नापकर कहने लगी, 'बिलकुल मेरी ही नाप है। भाभी, तू चिन्ता न कर, जो कपड़े सिऊँगी, तुझे बिलकुल पूरे आएँगे।'

"और सचमुच, वरी के जितने भी कपड़े थे, मुझे खूब अच्छी तरह से आते थे। वही ननद मेरे पास कितने ही महीने रही, और बाद में भी मेरे कपड़े वही सीती रही। मेरा लाड भी बहुत करती थी। मुझसे कहा करती थी, 'भाभी, चाहे मैं दो महीने के बाद जाऊँ, चाहे छः महीने के बाद, पर तू किसी और से कपड़ा मत सिलाना'...।

"मुझे भी वह अच्छी लगती थी। सिर्फ़ उसकी एक बात मुझे बुरी लगती थी, मेरा जो भी कपड़ा सीती थी, पहले स्वयं पहनकर देखती थी, कहती थी, 'तेरा-मेरा नाप एक है। देख, मुझे ठीक पूरा आता है। तुझे भी पूरा आएगा।"

और सारे कपड़े पहनते समय मेरे मन में आता था, 'कपड़े भले ही नये हों, पर हैं तो उसके उतारे हुए ही न?'

रस्सी पर टँगा हुआ टाट का पर्दा था, बान की ढीली-सी खाट थी। मेज़ भी गन्दा था, लड़की भी गन्दी और अपढ़ थी—पर यह ख़याल इतना नाज़ुक, इतना मुलायम...मैं चौंक उठी।

"पर बीबी! मैंने अपने मन की बात कभी नहीं कही। जाने बेचारी का मन छोटा हो जाए।"

"फिर?"

"फिर मुझे कोई बरस-डेढ़ बरस बाद पता चला, किसी ने बता दिया। उसकी और मेरे घरवाले की लगी हुई थी। यह उसका दादे-पोते के रिश्ते से भाई लगता था। पर एक उसके सगे भाई को यह बात बहुत बुरी लगती थी। वह तो एक बार अपनी बहन की गरदन उतारने को तैयार हो गया था।

"किसी ने मुझे यह भी बताया कि थोड़े समय जब वह बाग गोंदने लगी थी, तो उसे फिट आ गया था।" आँसुओं से भीगी करमावाली ने मेरा हाथ पकड़ लिया। "बीबी! तू मेरे मन की बात समझ ले। मुझसे उतरन नहीं पहनी जाती—मेरी गोटा-किनारी वाली सलवारें, मेरी तारों-जड़ी चुनरियाँ और मेरी सलमे वाली कमीजें—सब उसकी उतरन थीं। और मेरे कपड़ों की भाँति मेरा घरवाला भी...।"

करमावाली की आवाज़ के आगे मेरी क़लम झुक गई। कौन लेखक ऐसा फ़िकरा लिख देता!

"अब बीबी, मैं वह सारे कपड़े उतार आयी हूँ। अपना घरवाला भी। यहाँ मामा-मामी के पास आ गई हूँ। इनका घर लीपती हूँ, मेज़ धोती हूँ। और मैंने एक मशीन भी रख छोड़ी है। चार कपड़े सी लेती

हूँ और रोटी खा लेती हूँ। भले ही खद्दर चुड़े, चाहे लट्ठा। मैं किसी की उतरन नहीं पहनती।

"मेरा मामा सुलह कराने को फिर रहा है। मेरे मन की बात नहीं समझता। मैं जैसे जी रही हूँ, वैसे ही जी लूंगी। और कुछ नहीं चाहती, तू सिर्फ़ एक बार मेरे मन की बात लिख दे।"

करमावाली के जिस जिस्म के साथ कहानी घटी थी, उसे मैंने एक बार अपनी बांहों में भींचा, कितनी मज़बूत देह थी—कितना मज़बूत मन! वह चौगिर्दा जहाँ मैं पल-भर पहले मिर्चों से घबराय और शराब से खून-ख़राबे पर पहुंचती बात से घबरा गई थी, वहाँ पर करमावाली कितनी दिलेरी से जी रही थी।

बाहर सड़क पर शिमले से आती मोटरें गुज़रती थीं, जिनकी सवारियाँ, रेशमी कपड़ों में लिपटी हुई, कई बार पल-भर के लिए इस दुकान पर चाय के प्याले के लिए रुक जाती थीं, या सिगरेट की डिब्बी के लिए, या गरम तन्दूरी रोटी के लिए। वह, जिनके रेशमी कपड़े, जाने किस-किसकी उतरन थे।—और करमावाली उनकी मेज़ पोंछती थी, कुर्सियाँ झाड़ती थी—वह करमावाली जिसने एक खद्दर की कमीज़ पहन रखी थी, जो अपने जिस्म पर किसी की उतरन नहीं पहन सकती थी।

"बीबी, मैंने तेरा वह रुपया संभालकर रख छोड़ा है।"

"सचमुच! अब तक?"

"हाँ बीबी! वह रुपया मैंने उस समय अपनी ताइल को पकड़ा दिया था—और फिर उसके दूसरे ही दिन की बात थी, जब मैंने तेरी तस्वीर देखी थी। मैंने ताइल से वह रुपया लेकर संभाल लिया था। तू बीबी, मुझे उस रुपये पर अपना नाम लिख दे—फिर तू अब मेरी कहानी लिखेगी, मुझे ज़रूर भेजना।"

और करमावाली ने उठकर खाट के नीचे रखा ट्रंक खोला। ट्रंक में एक लकड़ी की संदूकची थी। उसने रुपए का तह किया हुआ नोट निकाला।

"मैं अपना नाम लिख देती हूँ, करमावालिए ! मैंने जाने कितनी कहानियों के नोटों पर अपना नाम लिखा होगा, पर आज मेरा दिल चाहता है, तू मेरे नोट पर अपना नाम लिख दे। कहानी लिखनेवाला बड़ा नहीं होता, बड़ा वह है जिसने कहानी अपने जिस्म पर झेली है।"

"मुझे अच्छी तरह से लिखना नहीं आता," करमावाली लजा-सी गई। और फिर बोली, "मेरा नाम कहानी में जरूर लिखना।"

"हाँ, मैं यही नाम, तेरे हाथों से लिखा हुआ तेरा नाम, अपनी कहानी का नाम रखूँगी।" मैंने पर्स से नोट भी निकाल लिया और कलम भी।

करमावालिए, आज तेरी कहानी लिख रही हूँ। वही प्यार के नोट पर लिखा हुआ तेरा नाम, आज इस कहानी के माथे पर पवित्र टीके की भाँति लगा हुआ है।

यह कहानी तेरा कुछ नहीं सँवारेगी। पर यह भरोसा रखना, वे दिल भी तेरे इस टीके को प्रणाम करते हैं, जिनके खून का रंग तेरे इस टीके के रंग से मिलता है।...और वह माथे भी एक लज्जा से उसके आगे झुकते हैं, जिन्होंने अपने गलों में जाने किस-किसकी उतरनें पहन रखी हैं।

एक जीवी, एक रत्नी और एक सपना

"पालक एक आने गड्डी, टमाटर छः आने रतल[1] और हरी मिरचें एक आने की ढेरी..." पता नहीं तरकारी बेचनेवाली स्त्री का मुखड़ा कैसा था, कि मुझे लगा पालक के पत्तों की सारी कोमलता, टमाटरों का सारा रंग और हरी मिरचों की सारी खुशबू उसके चेहरे पर पुती हुई थी।

एक बच्चा उसकी झोली में पड़ा हुआ दूध पी रहा था। एक मुट्ठी में उसने माँ की चोली पकड़ रखी थी और दूसरा हाथ वह बार-बार पालक के पत्तों पर पटकता था। माँ कभी उसका हाथ पीछे हटाती थी और कभी पालक की ढेरी को आगे सरकाती थी। पर जब उसे दूसरी तरफ़ बढ़कर कोई चीज़ ठीक करनी पड़ती थी तो बच्चे का हाथ फिर पालक के पत्तों पर पड़ जाता था। उस स्त्री ने अपने बच्चे की मुट्ठी खोलकर पालक के पत्तों को छुड़ाते हुए घूरकर देखा, पर उसके मुख पर की हँसी उसके चेहरे की सिलवटों में से उछलकर बहने लगी। सामने पड़ी हुई सारी तरकारी पर एक ताज़गी फैल गई। और मुझे लगा, ऐसी ताज़ी सब्ज़ी कभी कहीं उगी नहीं होगी।

कई तरकारी बेचनेवाले मेरे घर के दरवाज़े के सामने से गुज़रते थे। कभी देर भी हो जाती, पर मैं किसी से तरकारी न खरीद सकती थी। रोज़ उस स्त्री का चेहरा मुझे बुलाता रहता था।

---

१. बम्बई की तरफ़ की तोल, जो लगभग आध सेर के बराबर होती है।

इससे खरीदी हुई तरकारी जब मैं काटती, धोती और पसीने में भीगकर पकाने के लिए रखती—मैं सोचती रहती, उसका पति कैसा होगा ! वह जब अपनी पत्नी का मुखड़ा देखता होगा उसका मुंह अपने मुंह से छूता होगा, तो क्या उसके होंठों में पालक का, टमाटरों का और हरी मिर्चों का सारा स्वाद घुल जाता होगा ?

कभी-कभी मुझे अपने इन विचारों पर खीझ होती कि इस स्त्री का मुखड़ा किस तरह मेरे पीछे पड़ गया था। उन दिनों मैं एक गुजराती उपन्यास पढ़ रही थी। इस उपन्यास में प्रकाश की रेखा-जैसी एक लड़की थी—जीवी। एक मनुष्य उसका मुखड़ा देखता है और उसे लगता है कि उसके जीवन की रात में तारों के बीज उग आए हैं। वह हाथ लम्बे करता है, पर तारे हाथ नहीं आते और वह निराश होकर जीवी से कहता है, "तुम मेरे गांव में अपनी जाति के किसी आदमी से ब्याह कर लो। मुझे दूर से सूरत ही दिखती रहेगी।" उस दिन का सूरज जब जीवी का मुखड़ा देखता है, तो वह इस प्रकार लाल हो जाता है जैसे किसी ने कुंआरी लड़की को छेड़ा हो।···कहानी के धागे लम्बे हो जाते हैं और जीवी के मुखड़े पर दुःखों की रेखाएं पड़ जाती हैं।··· इस जीवी का मुखड़ा भी आजकल मेरे पीछे पड़ा हुआ था, पर उसके सम्बन्ध में अपने विचारों पर मुझे खीझ नहीं होती थी। वे तो दुःखों की रेखाएँ थीं—वही रेखाएँ जो मेरे गीतों में थीं, और रेखाएं रेखाओं में मिल जाती हैं।···पर यह स्त्री···इसके मुख पर हँसी की बूंदें थीं, इसके मुख पर एक तृप्ति के केसर की तुरियां थीं। इस केसर की तुरियां इसे मुबारक हों, पर इसका मुखड़ा रोज मुझसे क्या कहता था ?

दूसरे दिन मैंने अपने पांवों को रोका कि मैं उससे तरकारी खरीदने नहीं जाऊँगी। चौकीदार से कहा कि यहां जब तरकारी बेचनेवाला आये तो मेरा दरवाजा खटखटाना···दरवाजे पर दस्तक हुई। एक-एक चीज को मैंने हाथ लगाकर देखा। आलू—नरम और गड्ढों वाले। फ्रांसबीन—जैसे फलियों के शरीर में दानों के दिल सूख गए हों। पालक—जैसे वह दिन-भर की धूल फांककर बेहद थक गया हो।

टमाटर—जैसे ये भूख के कारण बिलखते हुए सो गए हों। हरी मिरचें—जैसे किसी ने उनकी सांसों में से खुशबू निकाल ली हो।" मैंने दरवाजा बन्द कर लिया। और मेरे पाँव मेरे रोकने पर भी उस तरकारी वाली की ओर चल पड़े।

आज उसके पास उसका पति भी था। वह मंडी से तरकारी लेकर आया था और उसके साथ मिलकर तरकारियों को पानी में धोकर, अलग-अलग रख रहा था और उनके भाव लगा रहा था। उसकी सूरत पहचानी-सी थी" इसे मैंने कब देखा था, कहाँ देखा था—एक नई बात पीछे पड़ गई।

"बीबीजी आप!"

"मैं"पर मैंने तुम्हें पहचाना नहीं।"

"इसे भी नहीं पहचाना? यह रत्ती!"

"रत्ती?—कौन रत्ती?"

"मैं माणकू, यह रत्ती।"

"माणकू" रत्ती"" मैंने अपनी स्मृतियों में ढूंढा, पर माणकू और रत्ती कहीं मिल नहीं रहे थे।

"तीन साल हो गए हैं, बल्कि महीना ऊपर हो गया है। एक गांव के पास" क्या नाम था उसका "आपकी मोटर खराब हो गई थी।"

"हाँ, हुई तो थी।"

"और आप वहीं से गुजरते हुए एक ट्रक में बैठकर धूलिया आये थे, नया टायर खरीदने के लिए।"

"हाँ-हाँ"" और फिर मेरी स्मृति में मुझे माणकू और रत्ती मिल गए।

रत्ती तब एक अधखिली कली-जैसी लड़की थी। और माणकू उसे पराये पौधे पर से तोड़ लाया था। ट्रक का ड्राइवर माणकू का पुराना मित्र था। उसने रत्ती को लेकर भागने में माणकू की सहायता की थी। इसलिए रास्ते में वह माणकू के साथ हँसी-मज़ाक करता रहा।

रास्ते के छोटे-छोटे गाँवों में कहीं खरबूजे बिक रहे होते, कहीं

ककड़ियाँ, कहीं तरबूज ! और माणकू का मित्र माणकू से ऊँची आवाज़ में कहता, "कहीं गरम है, ककड़ियाँ खरीद ले। तरबूज तो सुर्ख लाल है और खरबूजा बिलकुल मिसरी है...खरबूजा नहीं है तो कतरा मार ले...वाह रे रांझे !..."

"अरे छोड़, मुझे रांझा क्यों कहता है? रांझा साला आशिक था कि नाई था? हीर की डोली के साथ नौकर होकर चल पड़ा। मैं होता न कहीं..."

"वाह रे माणकू ! तू तो मिर्जा है मिर्जा !"

"मिर्जा तो हूँ ही, अगर कहीं साहिबाँ ने मरवा न दिया तो !" और फिर माणकू अपनी रत्नी को छेड़ता, "देख रत्नी, साहिबाँ न बनना, हीर बनना।"

"वाह रे माणकू, तू मिर्जा और यह हीर ! यह भी जोड़ी अच्छी बनी !" आगे बैठा ड्राइवर हँसा।

इतनी देर में मध्यप्रदेश का नाका गुजर गया और महाराष्ट्र की सीमा आ गई। वहाँ पर हर एक मोटर, लारी और ट्रक को रोका जाता था। पूरी तलाशी ली जाती थी कि कहीं कोई अफ़ीम, शराब या इसी प्रकार की कोई और चीज तो नहीं ले जा रहा। उस ट्रक की भी तलाशी ली गई। कुछ न मिला और ट्रक को आगे जाने के लिए रास्ता दे दिया गया। ज्यों ही ट्रक आगे बढ़ा, माणकू की बेतहाशा हँसी फूट पड़ी—

"साले अफ़ीम खोजते हैं, शराब खोजते हैं। मैं जो नशे की बोतल ले जा रहा हूँ सालों को दिखी ही नहीं..."

और रत्नी पहले अपने आप में सिकुड़ गई और फिर मन की सारी पत्तियों को खोलकर कहने लगी—

"देखना, कहीं नशे की बोतल तोड़ न देना ! सभी टुकड़े तुम्हारे पाँवों में धंस जाएंगे।"

"कहीं डूब मर !"

"मैं तो डूब जाऊंगी, तुम सागर बन जाओ।"

मैं सुन रही थी, हँस रही थी और फिर एक पीड़ा की लहर मेरे मन

में आई—"हाय स्त्री, डूबने के लिए भी तैयार है, यदि उसका प्रिय एक सागर हो'''"

फिर धुलिया आ गया। हम ट्रक में से उतर गए और कुछ मिनट तक एक विचार मेरे मन को कुरेदता रहा—यह 'रत्नी' एक अधखिली कली-जैसी लड़की। माणकू इसे पता नहीं कहाँ से तोड़ लाया था। क्या इस कली को वह अपने जीवन में महकने देगा ? यह कली कहीं पाँवों में ही तो नहीं कुचली जाएगी ?

पिछले दिनों देहली में एक घटना हुई थी। एक लड़की को एक मास्टर वायलन सिखाया करता था और फिर दोनों ने सलाह बनाई कि वे बम्बई भाग जाएँ। वहाँ यह गाया करेगी, वह वायलन बजाया करेगा। रोज़ जब मास्टर आता, वह लड़की अपना एक-आध कपड़ा उसे पकड़ा देती और वह उसे वायलन के डिब्बे में रखकर ले जाता। इस तरह लगभग महीने-भर में उस लड़की ने कई कपड़े मास्टर के घर दिये और फिर जब वह अपने तीन कपड़ों में घर से निकली किसी के मन में सन्देह की छाया तक न थी। और फिर फिर उस लड़की का भी वही परिणाम हुआ, जो उससे पहले कई और लड़कियों का हो चुका था और उसके बाद कई और लड़कियों का होना था। वह लड़की बम्बई पहुँचकर कला की मूर्ति नहीं, कला की कब्र बन गई, स्त्रीत्व का कब्र बन गई।'''और मैं सोच रही थी, यह रत्नी यह रत्नी क्या बनेगी ?

आज तीन वर्ष बाद मैंने रत्नी को देखा। हँसी के पानी से वह तरकारियों को ताज़ा कर रही थी। "पालक एक आने गड्डी, टमाटर छः आने रत्तल और हरी मिर्चें एक आने ढेरी।"'''और उसके चेहरे पर पालक की सारी कोमलता, टमाटरों का सारा रंग और हरी मिर्चों की सारी खुशबू घुली हुई थी।

मैं जान गई कि क्यों उसका चेहरा इतने दिनों से मेरे पीछे पड़ा हुआ था।

जीवी के मुख पर दुःखों की रेखाएँ थीं—वही रेखाएँ जो मेरे गीतों में थीं और रेखाएँ रेखाओं से मिल गई थीं।

· · · · · ·

रत्नी के मुख पर हँसी की बूँदें थीं —वह हँसी, जब सपने उग आएँ तो ओस की बूँदों की तरह उन पत्तियों पर पड़ जाती है। और वे सपने मेरे गीतों के तुकान्त बनते थे।

जो सपना जीवी के मन में था, वही सपना रत्नी के मन में था। जीवी का सपना एक महान् उपन्यास के आँसू बन गया और रत्नी का सपना गीतों के तुकान्त तोड़कर आज उसकी झोली में दूध पी रहा था।

एक सीटी तो बजा

सुन्दर और पारो का विवाह हुए कितने ही वर्ष हो गए थे, पर प्यार की पता नहीं यह कैसी धूप उनके मनों में चमकती थी कि वे किसी भी उलाहने का बादल अपने शरीर पर सहन नहीं करते थे। बादल कभी गहरे भी हो जाते, पर धूप के शरीर को पता नहीं कैसी जलन लग जाती कि वह हाथ-पाँव मारकर उन बादलों को फाड़ देती।

बादल छा जाने के क्षणों में भी न उनके शब्द रूठते और न कोई हाथ रुकता। सुन्दर अपने खेतों में काम करता हुआ पारो के पैरों की आहट लेता रहता और पारो उस दिन के भोजन में खास तौर पर कोई अचार, मुरब्बा रखकर सुन्दर के खेतों में पहुँच जाती।

"न हम किसी से बोलते हैं, न कोई हमें बुलाए, जिसे रोटी खानी है खा ले।"

शराब की कड़वाहट और शराब का नशा, दोनों एकबारगी सुन्दर के मुँह में घुल जाते।

"न हम किसी से बोलते हैं, न कोई हमें बुलाये, जिसे हमें लस्सी पिलानी है पिला दे," आगे से सुन्दर कहता।

यह गुस्सा कभी लम्बा भी हो जाता। रात हो जाती। "न हम किसी से बोलते, न कोई हमें बुलाये, हमने खटिया डाल दी है, जिसे सोना है, सो जाए," पारो कहती।

"न हम किसी से बोलते हैं, न कोई हमें बुलाये, जिसे हमारे पाँव दबाने हैं, दबा दे," सुन्दर कहता।

, और इस प्रकार न कभी रोटी का मुंह मैला होता, न किसी बिछौने की चादर में सिलवट पड़ती और न [illegible] टांगें दबाने का नियम टूटता।......"न हम किसी से बोलते हैं, न [illegible] हम बुलाये, जिसे हमारे पास..." कहने का भी समय हो जाता।

ऐसे शिखर पर [illegible] नहीं कि धक्का लगा नहीं।

पड़ोसियों के घर एक [illegible] थी—बिल्कुल ही बच्चियां। एक के पास [illegible] थी और दूसरी के पास हरे रंग की। सुन्दर [illegible] सो कहता, "यह है मेरी लाल [illegible]"

सुनकर पारो ने [illegible] न जाना, मुंह जलेगा...।"

सुन्दर अपनी [illegible] पारो के शरीर में जैसे ईर्ष्या की जलन [illegible] ओझल से नहीं, किसी थोड़ी से ब्याह [illegible] को, छोटा-सा धक्का लग जाता [illegible] हुआ था—"न हम किसी से बोलते [illegible]

विवाह के [illegible] सुन्दर और पारो के यहां कोई बच्चा न [illegible] सदियां की अदवायन कम [illegible] के समय अदवायन नहीं [illegible] और आगे से कभी मजाक में [illegible] हो, हमारे घर तो दही भी नहीं [illegible] पारो के मुंह में नीम घोल देती। [illegible] "न हम किसी से बोलते हैं, न कोई..."

. अन्त में [illegible] और ज्यादा चम कती। एक [illegible] पारो के होंठों को छेड़ती— 'मोर [illegible] बजा।"

"तू बड़ी ज़ालिम है।"

"तू बड़ा ज़ालिम है।"

"देख, तू मुझे ज़ालिम कहती है और मैं तुझे। हमें सलाह करके एक ही बात कहनी चाहिए।"

"अच्छा, हम दोनों कहते हैं 'ज़ालिम तू'···"

और दोनों जब तू-तू कहने लगते तो उन्हें 'मैं' भूल जाती।

रोज़ मोड़ों पर भूलती और किसी को सीटी बजाने के लिए कहती पारो को एक दिन मोड़ पर सीटी वाली बात कहनी भूल गई। उस दिन कहीं सुन्दर ने कह दिया, "लोग परदेस जाकर रुपयों की थैलियाँ भर लाते हैं, अगर मैं भी इस बार रामेशाह के साथ स्याम चला जाऊँ···"

और पारो के शब्द तब तक सोये रहे जब तक सुन्दर ने यह न कहा, "तेरी जगह अगर और कोई औरत होती, सीधी-सादी, ऐसी जादूगरनी नहीं, तो कहती कि जा कमाकर ला, कुछ पशु और खरीदेंगे।"

और पारो चमककर बोली, "हाँ, कुछ पशु और खरीदेंगे और फिर खुद ही पशुओं में पशुओं की तरह बँध जाएँगे···"

सुन्दर और पारो के मन की चमकती हुई धूप में जीवन ने सैकड़ों बादलों को चीर डाला था। पर फिर एक दिन ऐसा आया, जब मौत का अन्धकार इस प्रकाश के पीछे पड़ गया। पारो बीमार हो गई। गाँव का वैद्य दवाई देता था। पारो कड़वी दवाइयों से ऊब गई। जब कभी दवाई का घूँट अन्दर उलटकर मुँह फेर लेता तो वैद्य नाराज़ होता। सुन्दर एक विश्वास से कहता, "वैद्यजी, बाकी की दवाई मुझे पिला दो, इसे आराम आ जाएगा।" वैद्य हँस पड़ता।

पारो के अन्दर गयी हुई दवाइयाँ और सुन्दर के अन्दर पल रहा विश्वास—दोनों हार गए। जीवन का प्रकाश पल-पल घटता जाता था, पर पारो की अन्तिम दृष्टि में भी प्यार की धूप उसी प्रकार चमक रही थी। ···और अन्त में चमकती हुई धूप में भी जीवन का प्रकाश समाप्त हो गया।

और फिर सुन्दर अकेला रह गया; उसके शरीर पर वर्ष जम गए।

कोई बेटी होती, कोई बेटा होता, लोग सुन्दर को उसका पिता कहकर बुलाते। सुन्दर के जवान भतीजे उसे ताऊ कहते थे। लोगों ने सुन्दर के बुढ़ापे में आदर मिलाने के लिए उसे ताऊ कहना शुरू कर दिया।

सुन्दर की दृष्टि पारो के मुख पर से कभी नहीं हटी थी, पर जब से पारो नन बनी थी, सुन्दर की दृष्टि कभी किसी स्त्री के मुख की ओर नहीं गई थी।…वह किसी भी मोड़ पर नहीं मुड़ा था।

सुन्दर के भतीजे का ब्याह था। किसी की मदमाती जवानी ने सोचा—'इस बार अगर शहर से कोई गानेवाली ले आएं…'

और गांव में कितनी ही और मदमाती जवानियां थीं। इस विचार को रंग चढ़ता गया और अन्त में तीन-चार युवक प्रबन्ध करने के लिए शहर चल दिए। सुन्दर के जिम्मे भी शहर से कुछ चीजें खरीदने का काम था। वह भी उनके साथ हो लिया।

दूसरी रात जब युवक पता लगाकर गानेवाली की सीढ़ियां चढ़ने लगे तो ताऊ भी साथ था। वे हंसकर कहने लगे, "ताऊ, तुम यहां नीचे ही रहो, यह बड़ी ज़ालिम होती हैं, दीन-ईमान छीन लेती हैं—"

"अरे छोड़ो!" ताऊ हँसा।

इसके दूसरे दिन गांव में महफ़िल जमी। शहर की 'ज़ीनत' पता नहीं गांव की कितनी आंखों की रौनक बनी। रात आधी से ऊपर बीत गई। 'वाह…वाह…' के साथ रुपयों की वर्षा गाने की आग को ठंडा नहीं होने दे रही थी।

अचानक किसी ने देखा। ताऊ सुन्दर सबसे पीछे उस गानेवाली की ओर पीठ किये बैठा हुआ था।

"क्यों ताऊ, क्या हुआ?"

"कुछ नहीं…"

"फिर भी, आखिर हुआ क्या?"

"कुछ नहीं…"

"यह तो ठीक नहीं, मैं तो पूछकर ही रहूँगा।"

"देख न, मुझे चक्कर-पर-चक्कर आ रहे हैं।"

"कुशल तो है, किसीको बुलाऊँ ?"

"नहीं, यह बात नहीं।"

"फिर ?"

"तू कहता था न, यह बड़ी ज़ालिम होती हैं, दीन-ईमान छीन लेती हैं। शायद मेरा दीन-ईमान ही छीना जाने वाला है "

सुनकर उस व्यक्ति की हँसी बस में नहीं आ रही थी। वह सुन्दर के पास बैठा बेतहाशा हँसे जा रहा था।

कुछ समय और बीता। वह व्यक्ति घूम-फिरकर फिर सुन्दर के पास आया—"ताऊ, तुम भी कोई फरमाइश करो' कोई रुपया उसके सिर पर से न्योछावर करो' इधर मुंह तो फिराओ' " और वह ताऊ को जबरदस्ती ज़ीनत के सामने ले गया, जो गा रही थी।

बूढ़े सुन्दर की आँखों में जवान पारो का पता नहीं कौनसा रूप काँपा, कि उसने एक नहीं, इकट्ठे पाँच रुपए उसकी ओर बढ़ा दिए।

"तूने बहुत गाने गाए हैं ज़ीनत! एक मेरे मन का गाना भी गा दे।"

"कहो ताऊ! एक नहीं दस गा दूंगी।" ज़ीनत ने रुपयों के बदले हँसी लौटाकर कहा।

"एक ही, बस एक ही' "मैं मोड़ पर आकर भूल गई हूँ, एक सीटी तो बजा'..." किसी मोड़ पर भूल गए सुन्दर को अपने कानों में पारो की सीटी सुनाई दे रही थी और उसकी बूढ़ी आँखों में जवान आँसू काँप रहे थे।

शबे-चाँदनी

शम्मी मेरी छोटी बहन का नाम था। वह चौबीस घण्टों के लिए मेरी बहन थी। कल दोपहर को उसने मेरे साथ यह रिश्ता बनाया था और दोपहर के समय अभी जब मैंने डॉक्टर सेन के अस्पताल में फ़ोन किया है, कोई कह रहा है—"शम्मी! कौन श्यामा? अच्छा आपका मतलब है श्रीमती राजेन···श्रीमती राजेन की मृत्यु हो गई, कोई एक घण्टा हुआ।"

कल यही समय था दोपहर का। मेरे टेलीफ़ोन की घण्टी बजी थी। किसी ने पूछा था—

"फ़ाइव-वन-फ़ाईव-नाईन-फ़ाईव ?"

"जी हां।"

"अमृता प्रीतम ?"

"जी हां।"

"दीदी !"

"मैंने पहचाना नहीं।"

"आप पहचान नहीं सकतीं दीदी, आप मुझे नहीं जानतीं। मेरा नाम श्यामा है, पर आप मुझे शम्मी कहकर पुकारें। मैं बहुत दिन से अपने दिल में आपको दीदी कहती रही हूँ।"

"शम्मी !"

"यहाँ अस्पताल में हूँ। डॉक्टर सेन का अस्पताल, रूम नम्बर छत्तीस। दीदी, एक बार मिल जाना। आज मैं डॉक्टर से आज्ञा लेकर फ़ोन करने के लिए बाहर आई हूँ। सोचती थी, शायद तुम किसी के

कहने पर नहीं आओगी, जरूर आओ दीदी ! "नहीं, कल नहीं, आज ही आना। ज़िन्दगी के पास कई बार 'कल' नहीं होता।"

"कितने बजे से कितने बजे तक मिलने देते हैं ?"

"साढ़े चार से साढ़े सात तक।"

"रूम नम्बर छत्तीस—अच्छा शम्मी आऊँगी।"

"ज़रूर दीदी ! मैं तुम्हारे साथ बातें करने के लिए अकेली रहूँगी।" और जब मैंने पाँच बजे शम्मी के कमरे में पैर रखा था, तो शम्मी ने बिस्तर में से बाहें फैलाकर कहा था—"दीदी !"

जाने शम्मी के होठों में क्या था, उसने एक ही शब्द कहकर मेरे साथ रिश्ते की गाँठ डाल ली थी।

"मैंने तुम्हारा 'डॉक्टर देव' पढ़ा था, और मुझे लगा था कि जैसे मैं 'ममता' होऊँ और मेरी ही कहानी लिखी गई हो। फिर 'पाँसला' पढ़ा था। और मुझे लगा था कि जैसे मैं 'नीना' होऊँ और तुमने ' " शम्मी की आवाज़ रुँध गई थी।

"तुझे क्या तकलीफ है, शम्मी ?"

"ज़िन्दगी ने मेरे साथ एक मज़ाक किया था, दीदी ! पाँच बरस से मैं उसकी हँसी का अत्याचार सहती रही हूँ, अब थक गई हूँ।"

"शम्मी !"

"जब मैंने प्रेम के शब्द पढ़े थे, ज़िन्दगी ने मेरे सामने दो किताबें खोलकर रख दी थीं। एक किताब में ज़िन्दगी की फिलासफी थी, ज़िन्दगी का ज्ञान था और ज़िन्दगी का हल था। दूसरी किताब में थोड़ी-सी मनोरंजक कहानियाँ थी और थोड़ी-सी रंगीन तस्वीरें थीं। पहली किताब मुझे मुश्किल लगी। मैंने ज़िन्दगी का वेद एक ओर रख दिया और दूसरी किताब की तस्वीरें देखती रही। जब दिल के अर्थों को समझने लगी, परियों की कहानियों ने संतोष न दिया, और जैसे ही मैंने ज़िन्दगी के वेद को हाथ लगाया, ज़िन्दगी ने यह वेद मेरे हाथ से छीन लिया' "

"शम्मी !"

"यह कैसा इम्तहान है, दीदी ! ...पृथ्वी भी मेरे कॉलिज में पढ़ता था और राजेश भी। पृथ्वी के पास खड़ी होकर जब मैं उसके गहन-गम्भीर चेहरे को देखती थी, मुझे अपना चेहरा एकदम छोटा लगता था। मैं जिन्दगी की उस फिलासफ़ी के सम्मुख अनजान लगती थी—और जब मैं राजेश के पास खड़ी होती थी, मैं उसके साथ रूठ भी सकती थी, मान भी कर सकती थी—पर पृथ्वी को देखकर, मेरे भीतर सम्मान की भावना पैदा हो जाती थी, और मैं उसके सामने बोल भी नहीं सकती थी। जब मेरी शादी का समय आया, मेरे सामने कोई मुश्किल नहीं थी, मेरे माता-पिता ने मुझे आज्ञा दे दी थी कि मैं जिसे चाहूं, चुन लूं, और मैंने राजेश को चुन लिया।"

"फिर ?"

"शादी में अभी एक महीना बाकी था, एक दिन पृथ्वी ने मुझसे कहा कि मैं एक दिन के लिए पिंजौर के मुग़ल बाग़ में चलूं। जहां तक उस पर भरोसे का सवाल था, मुझे उससे बढ़कर भरोसा और किसी पर नहीं था। वह कहता था—यह उसकी पहली और अन्तिम मांग थी। मैं कैसे इंकार कर सकती थी ! मैं उसके साथ जाने को तैयार हो गई।"

"फिर शम्मी ?"

"पिंजौर दिल्ली से कोई डेढ़ सौ मील पड़ता है। पृथ्वी की अपनी कार थी और उसका अपना पुराना ड्राइवर चला रहा था। हम कोई पाँच घण्टे में पिंजौर पहुँच गए। रास्ते की एक बात सुनाऊँ दीदी ?"

"हाँ शम्मी !"

"पिंजौर से कोई दस मील इधर खजूर के वृक्षों का एक जंगल आता है। कुछ मिनटों के लिए ड्राइवर ने गाड़ी रोक दी, इंजन गरम हो गया था। जहाँ तक नजर जाती थी खजूर के वृक्ष दिखायी देते थे। मुझ पर सारा जंगल जैसे जादू करने लग गया। सड़क के बायीं तरफ़ एक कच्चा था। उस घर के आँगन में खड़ी लड़की के सिर पर किनारी वाला था और वह मिट्टी से पुते हुए आँगन में लाल मिर्च सुखा रही थी। करके जब वह मिर्च बिखेरती थी, उसके हाथों का लाल चूड़ा

छनकता था। दहलीज़ के पास खाट डाले जो जवान बैठा हुक्का पी रहा था, हुक्का गुड़गुड़ाते हुए उसने युवती को पुकारा और उसने चिमटे से आग लाकर उसके हुक्के में डाली। हुक्के की बुझती हुई आग फिर सुलग उठी। जाने कौनसी चिंगारी मेरे भीतर सुलग उठी। उस युवती के लाल चूड़े की झंकार थी या कि कच्चे आंगन में सूख रही लाल मिर्चों की धूल थी। या फिर खजूर के वृक्षों का जादू था। मेरी खुली आँखों में एक सपना झूल गया। मैंने देखा कि मैं सिर पर किनारी वाला दुपट्टा ओढ़े और हाथ में चूड़ा डाले लाल मिर्चों को सुखा रही थी, और सामने खाट पर बैठा पृथी हुक्का पी रहा था, और फिर पृथी ने मुझे आवाज़ देकर मुझसे आग माँगी ...''

''फिर शम्मी!''

''ड्राइवर ने गाड़ी चलायी और मैंने अपने-आपको सँभाल लिया। दस मील पलक झपकते खतम हो गए। पृथी ने बाग़वालों को पहले रुपये भेजकर दो कमरे रहने के लिए ले लिये थे। सामान कमरे में रख-कर मैं कमरे की खिड़की में खड़ी हो गई। कमरे की एक खिड़की बाग़ के एक ओर खुलती थी। एक सबसे ऊँची, दूसरी उससे नीचे, तीसरी उससे भी नीचे—सात मंज़िलें थीं बाग़ की, और सातों मंज़िलें सर्व के पेड़ों, आम, लीची के वृक्षों और गुलहर, गुलाब तथा चाँदनी-जैसे भाँति-भाँति के फूलों के पौधों से भरी पड़ी थीं। मुझे उनके जादू से भय लगने लगा।

''ड्राइवर ने बिजली का स्टोव लाकर चाय बनायी, और एक-एक प्याला चाय का पीकर मैं और पृथी 'कुड़ालिया नदी' देखने चल दिए। नदी एक मील थी बाग़ से। कच्ची पगडंडी की ओर उतरकर जब हम नदी-किनारे पहुँचे, पानी के स्पर्श ने मुझे हाथ पकड़कर बुला लिया। मैंने पृथी से कहा कि मैं नदी में नहाऊँगी। ऊँचे पहाड़ों के तीन ओर दीवारें थीं, दीवारों से घिरी हुई नदी बहती थी। सामने सीढ़ियों-जैसे खेत थे, दूर एक अमराई थी और एक ओर पहाड़ पर एक बूढ़ी पहाड़िन बकरियाँ चरा रही थी। नदी अपनी ओर लगी रेतीली-पथरीली दीवार में से मोड़ काटकर गुज़र रही थी, इसलिए कदमों का फासला भी ओट

कर देखा था। पृथ्वी दूसरी ओर चला गया और मैं इत्मीनान से नदी में नहाने लग गई। मुझे यहीं भी दीदी……"

"हाँ, शम्मी!"

"मेरे हाथों में कांच की लाल चूड़ियाँ थीं। पानी में डूबे हुए अपने हाथ मुझे बहुत ही सुन्दर लगे। चूड़ियों का लाल रंग मुझे खून का रंग लगा……यह शायद पहला क्षण था, जब मेरा दिल कहानियों वाली किताब छोड़कर ज़िन्दगी का भेद पढ़ने को चाहा…"

"शायद दूसरा क्षण शम्मी—पहला वह था जब तूने मज़ार के जंगल में खड़े होकर देखा था कि तू सिर पर किनारी वाला दुपट्टा ओढ़े अपने आंगन में लाल मिर्चें सुखा रही थी और पृथ्वी खाट पर बैठा हुक्का पी रहा था…"

"हाँ दीदी! वही पहला क्षण था, और यह दूसरा।"

"फिर ?"

"धूप ढल गई। मैंने नदी में से निकलकर बदन सुखाया और कपड़े पहनकर पृथ्वी को ढूँढने निकल गई। रेतीले-पथरीले किनारे पर चढ़कर मैंने देखा, पृथ्वी नहा चुका था, पर अभी उसके जिस्म पर पूरे कपड़े नहीं थे। वह एक बड़े-से पत्थर पर बैठा चुपचाप सिगरेट पी रहा था। सूरज की अन्तिम किरणें उसकी पीठ पर पड़ रही थीं। एक रोशनी मेरी आँखों में पड़ी और मैंने आँखें छिपा लीं। मुझे देखकर उसने कपड़े पहन लिए और हमने पहाड़ की ओर चढ़ती पगडण्डी को पकड़ लिया। रास्ते में बकरियाँ चराती बूढ़ी पहाड़िन ने मुझे आवाज़ देकर पूछा कि मैं देवी के स्थान पर क्या चढ़ाकर आयी हूँ ? और साथ ही मुझसे पूछने लगी कि मैंने देवी से क्या वरदान मांगा था ? मैं तो नदी के पानी में ही खो गई थी। आस-पास न कोई स्थान देखा था और न कोई वरदान ही माँगा था, हँसकर आगे चल दी—दीदी ! सच मानना, इतनी पढ़ी-लिखी थी, कभी कोई वहम नहीं हुआ, पर उस समय ऐसा लगा कि आज मैं किसी वरदान से वंचित हो गई हूं।"

"फिर शम्मी ?"

"ड्राइवर ने खाना बनाया था। थोड़ा-सा खाया और फिर मैं और पृथी बाग़ में बैठकर पहाड़ों के पीछे से उगते चाँद को देखने लगे। वृक्षों के साँवले मुँह प्रालोकित हो गए। मैं इन्तज़ार में थी कि शायद पृथी मुझसे कुछ कहेगा, पर उसने कुछ नहीं कहा। एक जगह पानी की तीखी झील और ऊँचे-ऊँचे फव्वारे थे। मैं और पृथी उसके पास खड़े होकर पानी की फुहार अपने कपड़ों पर उड़वाते रहे। शीत की एक हल्की-सी कँपकँपी मेरे जिस्म में आई। पृथी मेरी पीठ की ओर था। मेरे दाएँ कन्धे का पिछला हिस्सा पृथी की छाती के साथ लग रहा था। मेरे कन्धे में एक स्निग्धता समाती गई। सामने पत्थर की दीवार में दीये जलाने के लिए छोटे-छोटे आले थे। जाने कितने थे, कोई सौ के करीब होंगे। मुझे लगा, पृथी के कन्धे की स्निग्धता मेरे कन्धे में समाती हुई मेरे दिल में एक तपिश बनने लगी थी और उसी तपिश के सामने आलों में दीये जलने लगे थे···दीदी···दीदी···।"

"हाँ शम्मी।"

"मेरा दिल चाहा कि जो तपिश मुझे लग रही थी, उसकी बात मैं न कहूँ पृथी कहे। पर पृथी ने कुछ नहीं कहा। उसकी मुद्रा निश्चल थी—सदा की भाँति निश्चल। मैं अपनी तपिश को सँभालने लगी। बहुत रात गए, हम बाग़ से लौटे और अपने-अपने कमरे में जाकर सो गए।

"दीदी, रात को मेरे सपनों ने कई चिराग़ जलाए। मैंने देखा कि वह बाग़ मेरा था। मैं एक मुग़ल शहज़ादी थी, रात के समय अकेली अपने बाग़ में घूम रही थी। सर्व के पीछे मैंने अपने हाथों से छुए, लाल गुलाब तोड़कर मैंने अपने बालों में टाँका और फिर पानी के फव्वारों के पास खड़े होकर मैं खाली आलों में दीये रखने लगी। मैं एक दीये की लौ दूसरे दीये को छुआती गई और फिर पानी की झील की ओट में पत्थर के आलों में कोई सौ दीये जलने लगे। मेरे कन्धे पर किसी ने हाथ रखा। पानी की फुहार में ठण्डे शरीर में एक तपिश आई और मैंने देखा कि पृथी एक मुग़ल शहज़ादा था, जिसके होंठों की साँस मेरे होंठों में से गुज़र रही थी···।

"मुझसे सपने की अग्नि नहीं झेली गई। मैं जाग पड़ी। मेरे पैरों में हरकत आने लगी कि मैं पृथ्वी के कमरे पर क्यों न खटखटाऊँ। उसे अपना सपना सुना दूँ, और फिर उससे कहूँ कि अगर वह इस सपने को सच कर दिखाए तो मुझे जिन्दगी में और कुछ नहीं चाहिए।"

"फिर शम्मी !"

"मेरी क़िस्मत ने मेरे पैरों को थाम लिया। मेरे मन को जो मंज़िल बनानी थी, बना ली थी। मैंने सोचा, अब मुझे पृथ्वी से कोई अलग नहीं कर सकता। मैंने सोचा, अब मैं अनजान नहीं थी, अब मुझे जिन्दगी का भेद आ गया था…"

"फिर शम्मी !"

"दीदी, जब मैं सुबह जागी, जिन्दगी मेरे साथ अपना छल कर गई थी, पृथ्वी कहीं न मिला। मैंने उसका कमरा, बरामदा, गुसलखाना और बाग का कोना-कोना ढूंढ लिया…और फिर ड्राइवर ने मुझसे आकर कहा कि 'साहब आधी रात को चले गए थे, मैं उन्हें कालिका तक छोड़ आया था…आगे उन्होंने टैक्सी ले ली थी। मैं जब कहिए, आपको दिल्ली ले चलूंगा। गाड़ी बाहर खड़ी है।'…इर्द-गिर्द की दीवारों के सारे पत्थर मेरे पैरों के साथ बंध गए…कितनी देर बाद अपने बिस्तर को समेटने लगी थी। देखा, मेरे तकिये के नीचे पृथ्वी के हाथों का एक पत्र था। पत्र नहीं था दीदी, दो पंक्तियां थीं—

'चुकता न कर सकूंगा अपना हिसाब तुमसे,
शबे-चांदनी जो मैंने उधार मांगी है।'

"शम्मी ! कैसा होगा तेरा पृथ्वी, ऐसी गम्भीरता मनुष्यों में नहीं होती, देवताओं में होती होगी…"

"इसी गम्भीरता ने तो मुझे कहीं का न छोड़ा, दीदी !"

"फिर शम्मी ?"

"मैं दिल्ली लौट आई, लेकिन पृथ्वी का कहीं पता न चल सका दीदी ! न उसके घरवालों को और न मुझे। बरस बीत गया। सबने लिया कि वह ज़िन्दा नहीं है। ज़िन्दगी का छल आंचल में समेटे

मैंने राजेश के साथ शादी कर ली।

"अब एक बरस बीत गया है, पृथी का चित्र पत्रों में देखा है। लंदन में उसकी कविताओं का अनुवाद छपा है। वह संसार के प्रसिद्ध कवियों में से हो गया है, पर जो रात उसने मुझसे उधार माँगी थी और कहता था कि उसका हिसाब उससे चुकाया न जाएगा, उसका हिसाब मुझे चुकाना पड़ गया है, दीदी... मैं जिन्दगी में उसका हिसाब नहीं चुका सकती, मौत से उसका हिसाब चुकाऊँगी, दीदी...!"

"नहीं शम्मी, जिंदगी में हिसाब चुकाना ही बहादुरी है। ऐसे हिसाब मौत से नहीं चुकाए जाते। जीना मौत से मुश्किल होता है, शम्मी!"

"अब मैं थक गई हूँ, दीदी! दोनों फेफड़े खराब हो गए हैं, किन होंठों से उसे पुकारूँ, किन आँखों में उसकी बाट देखूँ?

"रात मुझे पाँच बरस पहले का सपना फिर आया है। वही बाग है, वही पानी की झील है, मैं उसी तरह मुग़ल शहज़ादी हूँ। पत्थर के आलों में मैंने बारी बारी दीये जलाये हैं, पर पृथी कहीं नहीं मिलता। फिर आँधी आ गई।... मेरे सारे चिराग बुझ गए। घोर अन्धकार फैल गया, घोर अन्धकार...

"इसीलिए मुझसे आज का दिन झेला नहीं गया, दीदी! पृथी में मेरे सपने की बात बताने वाला भी कोई नहीं। जब मैं उसे बताने लगी वह सुनने से पहले ही चला गया, और अब मैं भी वह सपना देखती चल दूँगी।"

"न शम्मी, ऐसा न कह!" मेरी आँखें डबडबा आई थीं।

"दीदी, तुम मेरी दीदी बन जाओ, मेरी बड़ी दीदी...!"

"शम्मी!" मेरी आवाज़ निकलनी मुश्किल हो गई थी।

"सभी मुझे श्यामा कहकर पुकारते हैं, एक पृथी मुझे शम्मी कहता था, और एक मेरा दिल कहता है, तुम कहो। एक अपने पृथी और एक अपनी दीदी के अलावा मैं किसी की भी शम्मी नहीं हो सकती।"

"शम्मी!"

"दीदी, तुमने किसी 'ममता' की कहानी लिखी थी, किसी 'मीरा' की कहानी लिखी थी, उस अभागिन सम्मी की कहानी भी लिख देना। सम्मी का यह सपना भी लिख देना, जिसे पूरी ने कभी न सुना, और उसे आंखों का काजल, सम्मी की जिन्दगी में अंधेरी आंधी एक ही थी…"

'मैं कल शाम गई सम्मी के अपने आगे को भूलकर आई थी। वही दोपहर का समय था, जब कल मुझे सम्मी ने दीदी कहा था। उसके होंठों में आते रहा था, एक ही शब्द में उसने मेरे साथ रिश्ते की गांठ बांध ली थी। आज पूरे चौबीस घंटे नहीं हुए, जिन्दगी की तमाम गांठें खोलकर वह चली गई है। टेलीफोन से मेरे फोन का उत्तर आता है—'सम्मी? कौन सम्मी? अच्छा आपका मतलब श्रीमती राजेश से है, श्रीमती राजेश की मृत्यु हो गई है, कोई एक घंटा हुआ होगा।'

"सम्मी ने सबके साथ रिश्ते की गांठें खोल ली हैं। पर जिनके हृदय में उसने प्यार की गांठ बांधी थी, कौनसी मौत उसे खोलेगी! लोगों की श्यामा मर गई है, लोगों की श्रीमती राजेश चली गई है, पर मैं यह नहीं मान सकती कि सम्मी मर गई है। सम्मी अपनी दीदी की कहानियों में जिन्दा रहेगी, सम्मी अपने पूरी की कविताओं में जिन्दा रहेगी।"

पाँच बहनें

एक विशाल देश की बात है। एक दिन ठंडे बिल्लौरी जल ने 'जिन्दगी' के सुन्दर अंगों को मल-मलकर धोया। फूलों ने जी भरकर सुगन्ध लगाई, और सातों रंग जिन्दगी के लिए एक पोशाक ले आए। सूर्य ने अपनी किरणों से फूलों में रस भरा, और जिन्दगी ने अपनी आँखों में एक पूर्णता-सी भरकर पवन से कहा—

"सुना है इस शताब्दी की पाँच पुत्रियाँ हैं, जवान और सुन्दर ?"

"हाँ।"

"आज मैं उनके घर जाऊँगी," जिन्दगी ने कहा।

पवन हँस दिया।

"मेरे पास पाँच सौगातें हैं—एक-जैसी मूल्यवान। मैं उन सबको एक-एक सौगात दूँगी। तुम चलोगे मेरे साथ ?"

"जैसी तुम्हारी इच्छा।"

"सबसे पहले पाँचों बहनों में से मैं बड़ी बहन के पास जाऊँगी।"

"अच्छी बात है। परन्तु उसके घर में खिड़कियाँ और दरवाज़े नहीं हैं। बस, एक ही दरवाज़ा है। उसका पति जब बाहर जाता है, तो जाते हुए वह बाहर से दरवाज़े में लोहे का ताला लगा जाता है। और फिर जब घर आता है, तो वही ताला बाहर से खोलकर घर के भीतर लगा देता है।"

"तुम मुझे अपने अन्दर भर लो, एक सुगन्ध की तरह। मैं तुम्हारे साथ उसके घर चली जाऊँगी।"

"न, न, सुगन्धियों के साथ मैं भारी हो जाता हूँ। तब मैं किसी

"वह मेरी आवाज़ नहीं सुनेगी ?"

"नहीं, उसके कानों के लिए इस दीवार के बाहर से आनेवाली सब आवाज़ें निषिद्ध हैं।"

"तुम भी क्या बातें करते हो पवन, आखिर वह जवान है ?"

"तुम वर्षों का हिसाब लगा रही हो। पर इस घर की औरत कभी जवान नहीं होती। जब वह बालिका होती है, तभी उस पर बुढ़ापा आ जाता है।"

ज़िन्दगी के पाँव में एक कम्पन-सा हुआ, और वह हारी-सी, सहमी-सी आगे की ओर चल पड़ी।

"यह इस शताब्दी की दूसरी पुत्री है।" पवन ने कहा।

"कौनसी ?"

"वह सामने रेल की पटरी पर कोयले चुन रही है।"

तीस वर्ष की एक स्त्री ने बाएँ हाथ से, बगल के पास फटी हुई कमीज़ को दुपट्टे के पल्लू से ढाँप लिया। दाएँ हाथ से टोकरी में मुट्ठी-भर कोयले डाले। कोई दसेक गज़ की दूरी पर पड़ी हुई अपनी लड़की को देखा। लड़की के रोने की आवाज़ अब तीखी हो गई थी। स्त्री ने टोकरी को एक ओर रख दिया और लड़की को अपनी गोद में ले लिया। लड़की ने माँ की छाती पर कई बार मुँह मारा, पर उसे दूध का धोखा न लग सका और वह फिर बिलखकर रो पड़ी। ज़िन्दगी ने समीप जाकर आवाज़ दी, "बहन !"

स्त्री ने शायद सुना नहीं।

ज़िंदगी और भी समीप आ गई और बोली, "बहन !" स्त्री ने अनजानी दृष्टि से एक बार देखा और फिर ध्यान दूसरी ओर कर लिया, जैसे सोच रही हो कि किसी और को आवाज़ दी है।

ज़िंदगी के अधर जैसे तड़प उठे, "मेरी बहन !" स्त्री ने तब उसकी ओर देखा और लापरवाही से पूछा, "तुम कौन हो ?"

"मुझे ज़िंदगी कहते हैं।"

स्त्री ने फिर अपना ध्यान अपनी रोती हुई लड़की की ओर कर लिया, जैसे इस भली औरत की बात से उसे क्या मतलब ?

"मैं तुम्हारे देश आयी हूँ, तुम्हारे शहर, तुम्हारे घर।" देश, शहर और घर वाली बात जैसे उस स्त्री की समझ में न आई।

"आज मैं तुम्हारे घर रहूँगी।"

स्त्री ने क्रोध से विदेशी के मुख की ओर देखा, जैसे विदेशी को यह न चाहिए था कि इस तरह का व्यंग करे।

"लड़की को दूध क्यों नहीं दे रही हो, बेचारी रो रही है ?"

स्त्री ने एक बार अपने सूखे हुए शरीर पर निगाह दौड़ाई, दूसरी बार लड़की के रोते हुए मुख पर। फिर भी वह समझ न सकी कि इस सवाल का मतलब क्या था ?

"यदि उसके पास दूध होता तो बच्ची को देती न !"

"तुम्हारा घर कितनी दूर है ?"

"उस गन्दे नाले के पार।"

"मैं तुम्हारे साथ चलूंगी।"

"पर वहाँ घर नहीं, फूस का छप्पर है।"

"वही सही।"

"पर वहाँ चारपाई कोई नहीं, बस दो बोरियां है।"

"तुम्हारा पति ?"

"वह बीमार है।"

"काम क्या करता है ?"

"कारखाने में मजदूर था, पर पिछले वर्ष जब छँटनी हुई थी, तब उसे निकाल दिया गया था।"

"फिर ?"

"एक वर्ष हो गया उसे बुखार आते।"

"तुम्हारी यह एक पुत्री ही है ?"

"एक मेरा पुत्र भी है पर…"

"…हाँ है ?"

"एक दिन वह भूखा था, बहुत भूखा। उसने एक अमीर आदमी की मोटर में से मेवा चुरा लिया था। पुलिसवालों ने उसे जेल में डाल दिया।"

"मैं तुम्हारे घर चलूँ ?"

"पर तुम हो कौन ?"

"मुझे ज़िन्दगी कहते हैं।"

"मैंने तो कभी तुम्हारा नाम नहीं सुना।"

"कभी, कभी छोटी उम्र में, बचपन में तुमने कहानियाँ सुनी होंगी।"

"मेरी माँ को बड़ी कहानियाँ याद थीं। मेरा पिता किसान था। पर वह उन किसानों में से था जिनके पास अपनी कोई ज़मीन नहीं होती। मेरी बड़ी बहन के विवाह पर हमने कर्ज़ लिया था, जो हमसे वापस न किया जा सका। साहूकार ने हमारा सब माल, हमारे पशु आदि, सब-कुछ छीन लिया था और मेरा पिता कहीं दूर किसी रोज़ी की तलाश में चला गया था। मेरी माँ को रात-भर नींद न आती थी। वह रात को मुझे जगाकर कहानियाँ सुनाया करती थी—भूतों की, प्रेतों की, देवों की कहानियाँ। पर मैंने तुम्हारा नाम तो कभी नहीं सुना।"

"फिर तुम्हारा पिता क्या कमाकर लाया था ?"

"मेरी माँ कहा करती थी कि जब वह आयेगा, बहुत सा सोना लाएगा। पर वह कभी आया ही नहीं लौटकर।" और स्त्री ने ज़रा घबराकर कहा, "तुम क्या करोगी मेरे घर जाकर ?"

"मैं···" ज़िन्दगी और कुछ न कह सकी। स्त्री कोयले की टोकरी थामे उठ खड़ी हुई।

"मैं तुम्हारे लिए सौगात लाई हूँ," ज़िन्दगी ने रस और सुगन्ध-भरी एक पिटारी स्त्री के सामने रख दी।

"न बहन, यह तुम अपने पास ही रखो।" स्त्री ने जैसे भयभीत हो आँखें दूर हटा लीं।

"मैं तुम्हारे लिए ही लाई हूँ।"

"न बहन, कल को पुलिसवाले कहेंगे, तूने किसी की चोरी कर ली है।"

स्त्री शीघ्रता से अपने घर की ओर मुड़ी। पर थोड़ी दूर जाकर जब उसने देखा कि जिन्दगी अब भी उसके पीछे-पीछे आ रही है, तो वह डरकर थम गई।

"तुम लौट जाओ बहन! मेरे साथ मत आओ। मुझे बेगानों से बहुत डर लगता है। पहले भी एक बार···एक बार एक जवान-सा शहरी आया था। कहने लगा मैं तुम्हारे पति को काम दिला दूंगा, तुम्हारे बेटे को जेल से छुड़ा दूंगा···पड़ोसियों से आटा मांगकर मैंने उसके लिए रोटी पकायी···पर जब मैं अपने पुत्र को देखने के लिए उसके साथ बाहर गयी···तो रास्ते में···रास्ते में वह···"

स्त्री का अंग-अंग जल उठा और वह बेतहाशा वहां से भाग गई।

ज़िन्दगी की आंखों में छलक रहे आंसुओं को पवन ने अपनी हथेली से पोंछ दिया, "चलो मैं तुम्हें तीसरी बहन के घर ले चलता हूं।"

ज़िन्दगी जब महल-सरीखे एक घर के सामने से गुज़री, तो पवन ने धीमे से उसके कान में कहा, "यही है उसका घर।"

द्वार पर खड़े दरबान ने ज़िन्दगी की राह रोक ली। दासी के हाथ भीतर संदेशा भेजा गया। ज़िन्दगी बाहर प्रतीक्षा में खड़ी रही, खड़ी रही···और जब उसे भीतर से इशारा हुआ, तो वह उस दासी के पीछे-पीछे कांच के कई द्वारों को लांघती, रेशम के कई परदे हटाती खास कमरे में पहुंची।

सफ़ेद मर्मरी पत्थर की एक औरत की मूर्ति कमरे के एक कोने में खड़ी थी। पानी की फुहार उसके बदन को ढांप रही थी। सफ़ेद मर्मरी पत्थर-सी एक औरत की मूर्ति एक कोमल-सी कुरसी पर पड़ी थी। रेशम के तार उसके बदन को ढांपने का यत्न-सा कर रहे थे। औरत की खड़ी मूर्ति में से तो कोई आवाज़ न आई, पर औरत की बैठी हुई मूर्ति में से आवाज़ आई—

"तुम कौन हो ? मैं पहचान नहीं पाई।" जिन्दगी ने भौंचक-सी चारों ओर देखा। पर वहां कोई स्त्री न थी। तब उसने खड़ी हुई मूर्ति को हाथ लगाया। वह पत्थर-सी सख्त थी। तब जिन्दगी ने बैठी हुई मूर्ति को स्पर्श किया। वह रबड़-सी मुलायम थी।

"मुझे जिन्दगी कहते हैं," जिन्दगी ने धीरे से कहा।

"याद नहीं आ रहा, यह नाम कहीं सुना हुआ प्रतीत होता है, शायद छुटपन में किसी पुस्तक में पढ़ा था।"

"पुस्तकें मे ?"

"हां। मुझे याद आ गया, मेरे साथ एक लड़का पढ़ता था। वह गीत लिखता था, एक बार उसने मुझे अपने गीतों की एक किताब दी थी। उसमें यह नाम आया था।"

"वह अब कहां रहता है ?"

"ग़रीब-सा लड़का था। पता नहीं कहां रहता है ?"

"उसकी किताब ?"

"इस नयी कोठी में आते समय पुराना सामान मैं साथ नहीं लाई थी। यह सारा सामान हमने नया खरीदा है।"

"बहुत महंगा खरीदा है।"

"मेरा पति देश का बहुत बड़ा व्यक्ति है। अब के चुनाव में भी, मुझे आशा है, वह फिर बड़ा व्यक्ति चुना जाएगा। हम अब भी चाहें, ऐसा या इससे भी अच्छा सामान खरीद सकते हैं।"

रबड़-जैसी मुलायम स्त्री की मूर्ति ने मेज पर रखे हुए फल जिन्दगी की ओर बढ़ाए। फलों को छूते ही जिन्दगी को उनमें से एक गंध-सी अनुभव हुई।

"मैंने अभी मजदूरों से ताज़े फल तुड़वाए हैं। दासी ने शायद धोए नहीं। मजदूरों के हाथों की गंध आती होगी, आज गरमी है। मेरी तबीयत कुछ ठीक नहीं, आज…।"

"यदि तुम्हें अच्छा लगे, तो मैं तुम्हें बाहर ठंडी और खुली हवा में ले चलती हूं।" जिन्दगी ने एक सांस भरकर कहा।

"नहीं, नहीं । मैं इस वक्त बाहर नहीं जा सकती । अपनी श्रेणी से बाहर के लोगों में उठने-बैठने से हमारा आदर नहीं रहता…असल में जब मेरा ऑपरेशन हुआ था, कुछ कसर रह गई थी । कभी-कभी मुझे दर्द होता है…"

जिन्दगी ने उठकर उस रबड़-जैसी मुलायम स्त्री की भुजा पकड़ी। फिर उसके बदन पर हाथ रखा । तुम्हारा दिल क्यों नहीं धड़कता ? पत्थर की तरह खामोश और ठंडा है…"

"यही तो कसर रह गई है । मेरा पति कहता है, अब हम किसी बाहर के देश जाएंगे…शायद अमेरिका, वहां के डॉक्टर बड़े कुशल हैं । मेरा ऑपरेशन शायद फिर होगा…"

"किस बात का ऑपरेशन है ?"

"जब कोई लड़की बड़े घर में ब्याहकर आती है, विवाह की पहली रात को देश के कुशल डॉक्टर उसका ऑपरेशन करते हैं । यह बड़े घरों की रीति है…"

"विवाह की रात को ऑपरेशन !"

"हां, उस लड़की के बदन को चीरकर उसका दिल बाहर निकाल लेते हैं । उसकी जगह स्वर्ण की एक शिला रख देते हैं, बड़ी सुन्दर शिला ! बड़ी मूल्यवान होती है । मेरे ऑपरेशन में थोड़ी-सी कसर रह गई थी । कभी-कभी कसक-सी उठती है । इन चुनावों में मेरा पति यदि जीत गया, तो हम आगामी मास में हवाई जहाज द्वारा बाहर जाएँगे । फिर ऑपरेशन होगा, और मैं ठीक हो जाऊँगी ।"

"मैं तुम्हारे लिए एक सौगात लाई हूँ ।"

"नहीं, नहीं । मेरे पति ने कहा है कि आजकल किसी से कोई चीज नहीं लेनी है । चुनाव निकट आ गए हैं…और देश की बड़ी-बड़ी मिलों में हमारी पत्ती है । हमें ये छोटी-छोटी चीजें लेने की क्या आवश्यकता है ?"

टेलीफ़ोन की घंटी बजी । और रबड़-जैसी मुलायम स्त्री ने टेलीफ़ोन में दो-तीन मिनट बात करके पास बैठी हुई जिन्दगी से कहा—

"बहन, तुम्हें यदि मुझसे कोई काम है तो कभी फिर आ जाना। इस समय मेरा पति और उसकी पार्टी के कुछ लोग घर आ रहे हैं"

पवन ने ज़िन्दगी का हाथ थाम लिया और उसे सहारा देकर चौथी बहन के घर ले आया। वह साधारण-सा घर था। पर घर के द्वार के सामने एक चमकती हुई गाड़ी का मुंह आँखों को चौंधिया रहा था। संध्या होने वाली थी। ज़िन्दगी ने घर को सोधा लांघकर भीतर की ओर झांककर देखा। बाईस-तेईस वर्ष की जवान स्त्री एक बालक को थपकी देकर सुला रही थी। कमरे का सारा सामान मुश्किल से गुज़ारे लायक था, तो भी युवती के वस्त्र झिलमिल-झिलमिल कर रहे थे।

ज़िन्दगी ने धीरे से द्वार खटखटाया।

"कौन ?"··धीरे से युवती दहलीज़ के पास आई, "बच्चा जग जाएगा।" तब युवती ने चौंककर कहा, "तुम··तुम !" उसके होंठ लड़खड़ा गए।

"मुझे ज़िन्दगी कहते हैं।"

"मुझे मालूम है।"

"तुम्हें मालूम है ?"

"मैं सारी उम्र तुम्हारी परछाईं के पीछे भागती रही हूँ ··अब मैं थक चुकी हूँ। अब मैंने तुम्हारा रास्ता छोड़ दिया है। तुम चली जाओ। जहाँ से आई हो वहीं लौट जाओ। देख नहीं रही हो, मेरे द्वार पर शाप की एक रेखा खिंची हुई है। इस रेखा को तुम नहीं लांघ सकती। इस रेखा को मिटा नहीं सकती। तुम चली जाओ। चली जाओ··" युवती की सांस फूल गई।

"मेरी अच्छी बहन !"

"बहन ! मैं किसी की बहन नहीं। मैं किसी की बेटी नहीं। मैं किसी की कुछ नहीं।"

"यह तुम्हारा बच्चा··" ज़िन्दगी ने कमरे में सोए पड़े बच्चे को

देगा !

"मेरा बच्चा ! मेरा बच्चा !! पर इसका बाप कोई नहीं।"

"मैं समझी नहीं।"

"जब मेरे देश में आज़ादी की नींव रखी गई थी, उसकी नींव में मेरी हड्डियां चुनी गई थीं। जब मेरे देश में स्वतन्त्रता का पौदा लगाया गया था, मेरे रक्त से उस पौदे को सींचा गया था। जिस रात मेरे देश में खुशी का चिराग जलाया गया, उसी रात मेरी इज़्ज़त और आबरू के पल्लू को आग लगी थी। यह बच्चा···यह बच्चा उसी रात की निशानी है, उसी आग की राख है, उसी ज़ख्म का दाग है···"

"मेरी दुखी बहन !"

"फिर मेरी सब रातें उस रात-जैसी हो गईं···मैं तुम्हारे सपने देखा करती थी। मैं सोचती थी, तुम मेरे कुंआरे सपनों को मेंहदी लगाकर रंग दोगी; मेरी मां के सहन में देश के गीत गाए जाएंगे; और मैं अपने कानों से शहनाई की आवाज़ सुनूंगी···।

"···मेरे गांव का एक जवान लड़का मेरे सपनों का राजा था। मैं तुम्हारी परछाईं से खेलती फिरती थी। जब मेरा गांव लुटा, मेरा पिता बुरी तरह मारा गया। मेरे भाई मारे गए और मुझे एक सांप ने काट लिया। फिर एक और सांप ने। एक और सांप ने···। मनुष्य-जैसे मुंह-वाले ये कैसे सांप हैं, जिनका काटा कोई मरता तो नहीं, पर उम्र-भर उनके विष से जलता रहता है···। फिर मैंने तुम्हारी एक और परछाईं देखी। मेरे देश के लोग कहने लगे, इन सांपों से मुझे बचा लिया जाएगा। इनका ज़हर मेरे शरीर में से दूर कर दिया जाएगा। मैं फिर पहले-जैसी भोली और स्वच्छ लड़की बन जाऊंगी। मैं भागी, तुम्हारी परछाईं के पीछे भागी···पर यह सब झूठ था, सब झूठ। मेरे सपनों के राजा ने मुझे स्वीकार न किया। मुझे अपने घर की सीमाओं से वापस लौटा दिया···मैं फिर उसी विष में जलने लगी। उन्हीं सांपों-जैसे और सांप मेरे इर्द-गिर्द लिपट गए।···बाहर वह गाड़ी देख रही हो ? कितनी चमक रही है···वह एक बहुत बड़े सांप की मोटर गाड़ी है···आज रात

मुझे यह काटेगा…।"

जिन्दगी बोल न सकी। उसके हाथों में जो सौगात थी वह उसके आंसुओं से भीग गई।

"यह तुम क्या लाई हो सौगात मेरे लिए? देख नहीं रही हो, मेरा सारा शरीर विष से बुझा हुआ है। मैं जब तुम्हारी सौगात को हाथ लगाऊंगी, वह भी विषैली हो जाएगी। ये सुगंधियां ! यह रंग…! मेरे रोम-रोम में विष रचा हुआ है, विष विष "

पवन ने बेसुध जिन्दगी के मुख पर अपने वस्त्र से हवा की। और जब जिन्दगी को कुछ सुध आई, पवन उसे पांचों में से सबसे छोटी बहन के घर ले गया।

बीस वर्ष की एक मानवी युवती के आस-पास बहुत सी पुस्तकें, साज और रंग बिखरे पड़े थे।

जिन्दगी ने सुख की एक सांस भरी। सामने बैठी हुई उस युवती ने अपनी उंगली से साज के तार को छेड़ा और एक मीठा-सा गीत वातावरण में बिखर गया। युवती गाती रही उसकी आंखों में सितारों-जैसे आंसू चमक रहे थे। और फिर उसने रंगों की बारीक रेखाओं से एक कागज पर बड़ी रंगीन तस्वीर बनाई।

जिन्दगी का दिल चाहा कि उस युवती के कलाकार हाथों को चूम ले। स्वर, शब्द और चित्रों का एक जादू वातावरण में घुल रहा था।

जिन्दगी ने एक गहरी सांस भरी। और हाथ में रंग और सुगंध की पिटारी लिये आगे बढ़ी। युवती की आंखों में एक अचम्भा-सा भर गया।

"मुझे मालूम है," युवती बोली। पर उसके स्वागत के लिए उठकर आगे न बढ़ी। अचानक जिन्दगी के पांव अटक गए। लोहे के बारीक तार कमरे के दरवाजे के सामने ऊंचे उठ रहे थे।

"मैं इस समय तुम्हारा स्वागत नहीं कर सकती," युवती ने सिर झुका दिया।

"क्यों?" जिन्दगी हैरान थी।

"यदि तुम रात को आओ, जिस समय मैं सो जाऊँ, मेरे सपनों में; या फिर जाग रही होऊँ तो मेरी कल्पना में, मैं तुम्हारे साथ बहुत सी बातें करूँगी, बहुत-कुछ सुनाऊँगी...मैंने नित तुम्हारी परछाईं पकड़ी है।...यह देखो, इन रंगों से मैंने तुम्हारा आँगन बनाया है...इन तारों के स्पर्श से मैंने तुम्हारे गीत गाए हैं...इन लिखतों से मैंने तुम्हारे प्यार की कहानियाँ रची हैं।"

"आज जब मैं स्वयं तुम्हारे पास आई हूँ...तुम..."

"धीरे, बहुत धीरे। मेरे घर की सभी दीवारों में छेद हैं...सैकड़ों और हजारों आँखें मेरी रखवाली करती हैं। ऊपर देखो इन छेदों में...तुम्हें हर एक छेद में दो भयानक आँखें दिखाई देंगी। ये आँखें लावे से भरी हुई हैं, और एक-एक ज़बान...उनमें से सैकड़ों तीर निकलते हैं।...यदि मैं तुम्हारे पास बैठ जाऊँ, तुम्हारे पास!...उनके तीर अभी मेरी रंग-भरी प्यालियों को उलट देंगे...मेरे साज के तार उलझा देंगे...मेरे गीतों के एक-एक स्वर को बींध देंगे...और उन आँखों का लावा..."

"पर ये लोग तुम्हारे गीत सुनते हैं, तुम्हारी कहानियाँ पढ़ते हैं, तुम्हारे चित्रों को देखते हैं..."

"यहाँ के कलाकार तुम्हारी बातें कर सकते हैं, तुम्हारा मुँह नहीं देख सकते। और जो तुम्हारा मुख देख ले, उस मजूर को मौत की सज़ा दी जाती है।...अब तुम चली जाओ, जिन्दगी! कोई देख लेगा...मेरे सपनों के अतिरिक्त ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ मैं तुम्हें बिठा सकूँ..."

"मैं तुम्हारे लिए एक सौगात लाई थी।"

"वह भी मैं उसी समय लूँगी...जरूर आना...मैं सातों स्वर्ग रचाऊँगी, तुम आना, तुम्हारी सौगात से अपने स्वर्ग सजाऊँगी। तुम जरूर आना...और फिर सुबह उठकर मैं तुम्हारे प्यार का गीत लिखूँगी, तुम्हारे रूप का चित्र बनाऊँगी, तुम्हारी सुन्दरता के गीत गाऊँगी...पर अब तुम चली जाओ, कोई देख लेगा..." और युवती ने जिन्दगी की ओर से मुँह फेर लिया।

नील कमल

चैत का महीना था। रात तारों से भरी थी। नींद आँखों में आती न थी। मैंने सिरहाने रखे लैम्प को जला दिया और पढ़ने लगी—

"संगीत! तूने मेरी दुख-भरी आत्मा को झँझोड़ दिया है। संगीत! तूने मुझे शक्ति, शान्ति और खुशी दी है। मेरे प्यार, मेरी दौलत, मैं तेरे पवित्र अधरों को चूमता हूँ। तेरी मधु-सी मीठी बातों में मैं अपना मुँह छिपा लेता हूँ। अपनी आँखों की तपती हुई पलकें मैं तुम्हारी शीतल हथेलियों पर रख देता हूँ। हम एक अक्षर नहीं बोलते, आँखें बन्द हैं। पर तुम्हारी आँखों का अवर्णनीय प्रकाश मैं देख सकता हूँ। और मैं तुम्हारे मौन अधरों की मुस्कान पीता हूँ और तुम्हारे सीने से लगकर मैं अपार जीवन की धड़कन सुनता हूँ।"

'ज्याँ क्रिस्तोफ़' के ये शब्द पियानो के स्वरों को चूमते रहे, और मैंने लैम्प की बत्ती बुझाकर एक बार फिर तारों के आलोक को आँखों में भर लिया, फिर आँखें बन्द कर लीं।

किसी की साँस ने मेरी गरदन को स्पर्श किया। मैं चौंककर जाग पड़ी। मेरे सिरहाने की ओर कोई परी-सी स्त्री खड़ी थी। सिर से पाँव तक पोशाक में तारे टँके हुए थे।

मेरी आँखें उसके प्रकाश को सहन न कर सकीं। प्रकाश की उस नदी में जैसे सुगन्धों की एक लहर आई। मुझे लगा जैसे मैं लहरों में समा गई हूँ। एक बार फिर मैंने उसके मुँह की ओर ताका। उसके बालों के एक-एक तार में फूल गुँथे हुए थे।

"तू एक बार मेरे साथ आयेगी ?" मोतियों की झंकार-जैसी आवाज़ आई।

"हाँ…!"

उसके शब्द ऐसे थे कि धरती का कोई प्राणी उसकी अवज्ञा नहीं कर सकता। उसने मेरा हाथ थामा, और रास्ते-पर-रास्ते हमारे पाँव तले से निकलने लगे।

फूलों की पत्तियों को जोड़-जोड़कर जैसे किसी ने एक महल बनाया हो। मैंने हाथ लगाकर देखा, सचमुच फूलों की पत्तियाँ ही थीं, पर न जाने किस सहारे पर टिकी हुई थीं वे! फूलों की दीवारें, फूलों की छतें और फूलों के ही फ़र्श थे। फूलों की शय्या पर बैठते हुए उसने कहा, "आज मैं तुम्हें अपनी कहानी सुनाऊँगी। जब दिल में बहुत पीड़ा होती है तब मैं इसी तरह किसी को अपने पास बिठाती हूँ और अपनी पूरी कहानी सुना देती हूँ तो कुछ शान्ति-सी पा जाती हूँ।"

फूलों के घर में रहने वाली और तारे टँके हुए वस्त्र पहनने वाली स्त्री को भी पीड़ा हो सकती है ?—मैं कुछ समझ न सकी।

"तुम्हें किताबें अच्छी लगती हैं ?" उसने पूछा।

"मेरे पास यही तो दौलत है, और कोई भी दौलत मुझे इससे अधिक प्रिय नहीं।"

"इसीलिए मैं तुम्हें अपनी कहानी सुनाऊँगी। उन अच्छी पुस्तकों में भी मेरी ही बातें होती हैं। पर आज मैं अपने मुंह से तुम्हें अपनी कहानी सुनाऊँगी।

"मेरी माँ का नाम धरती है। अभी मेरा जन्म नहीं हुआ था, माँ गर्भवती थी, तो एक दिन उसने सोचा, अपना घर मैं रोज़ फूलों से सजाती हूँ आज लोगों के रास्तों को भी फूलों से सजाऊँगी।

"सो उस दिन उसने सब रास्तों पर फूल बिछा रखे थे। उसी दिन ज़िन्दगी अपने प्रिय से मिलने जा रही थी। उसके पाँवों को फूल बड़े अच्छे लगे। कई फूल उसने अपने जूड़े में लगा लिए, कई फूल पिरोकर अपनी बाँहों पर लपेट लिए। फिर मेरी माँ को वर दिया कि उसके यहाँ

एक ऐसी कन्या जन्मेगी जो संसार मे सबसे सुन्दर होगी।

'मैं उसका नाम क्या रखूँ ?' मेरी माँ ने पूछा।

"'उसका नाम मुहब्बत रख देना।' जिन्दगी ने कहा और फूलों-बिछे रास्ते पार करती हुई अपने प्रिय से मिलने चली गई।

"जब मैं जन्मी तो माँ ने जिन्दगी के कहने के अनुसार मेरा नाम मुहब्बत रख दिया।"

"सच, जिन्दगी ने धरती को कैसा अच्छा वर दिया!" मैंने एक बार उस देवी के मुँह की ओर देखा।

"मेरी माँ जब फिर गर्भवती हुई तो एक दिन उसने बागों के सभी फूल लेकर अपने घर को सजा लिया। उस दिन लोगों के सभी रास्ते सूने थे। माँ ने फूलों के काँटे उतारकर अलग फेंक दिए और फूलों की पत्तियों से अपना शृंगार करने लगी। उस दिन भी जिन्दगी अपने प्रिय से मिलने जा रही थी। जब वह हमारे घर के आगे से निकली तो माँ ने जो काँटे फेंके थे, वे उसके पाँव मे बुरी तरह से चुभ गए।

"जिन्दगी के पाँव लहूलुहान हो गए और उसने मेरी माँ को शाप दिया कि उसके घर एक ऐसी कन्या जन्म लेगी जो संसार की सबसे कुरूप स्त्री होगी और उसका नाम 'नफरत' होगा।

"मेरी माँ रोने लगी। पर क्रोध से भरी हुई जिन्दगी को अपना शाप न लौटाना था, न लौटाया। जब दूसरी लड़की पैदा हुई तो वह सचमुच कुरूप थी, और उसके सारे अंगों में विष था।"

"वह अभी जिन्दा है ?" मैंने सहमकर पूछा।

"हाँ, जिन्दा है। वह जिसे भी स्पर्श करती है उसके अंगों में विष भर जाता है।"

"विष ?"

"मैं तुम्हें वे लोग दिखाऊँ जिन्हें उसने डंक मारे हैं ?" मैं डर गई, घबरा गई और उस देवी स्त्री के आँचल को मैंने थाम लिया।

"डर मत, मैं दूर से ही दिखाऊँगी।" और उसने धूएँ की एक खिड़की खोली।

फूलों के महल में कोई भी न था, एक आग जल रही थी। इर्द-गिर्द लोगों का जमघट था। कई थे, सैकड़ों थे। आग की लपटें एक बार ऊंची उठीं तो मैंने ध्यान से देखा कि शरीर से तो सब ठीक थे, आंखें प्रतीत होते थे उनके मुंह सांपों-जैसे थे। हाथ, पांव, डील, सब मनुष्यों-जैसे थे, पर उनके सांपों-जैसे मुखों से लम्बी-लम्बी जबानें निकालकर आग को चाट रही थीं। उन्होंने हाथों में प्यालियों-सी जो थाम रखी थीं, अग्नि के प्रकाश में मैंने देखा ये मनुष्यों की खोपड़ियां थीं।

सिर से पांव तक मैं कांप गई, और शायद फिर मुझे होश न रहा।

जब मेरी आंखें खुलीं, मैं उस देवी स्त्री के बिछौने पर लेटी हुई थी और फूलों की खिड़की बन्द थी।

"बहुत डर लगा था ?"

मुझे एक बार फिर वह आग और उसके इर्द-गिर्द खड़े वे लोग याद आ गए, जिनके सिर सांपों-जैसे थे और धड़ मनुष्यों-जैसे। मैं फिर कांप-कांप उठी।

"दिन के प्रकाश में तू इन्हें कई बार देखती है, तब तुझे डर नहीं लगता ?"

"मैंने इन्हें कभी नहीं देखा।"

"दिन के प्रकाश में ये लोग मुख पर नक़ाब डाल लेते हैं।"

"नक़ाब ?"

"हां, मनुष्य के मुख का इन्होंने नक़ाब बना रखा है, अपने सांपों-जैसे सिरों को ढांपने के लिए वह नक़ाब ये हमेशा पहने रहते हैं।"

"तो इनमें हर समय विष भरा रहता है ?" मेरा जिस्म जैसे बर्फ़ का टुकड़ा हो गया हो।

"ये सभी बेचारे मेरी बहन द्वारा डँसे हुए हैं। इनके रोम-रोम में विष भरा है, इनमें से कई इस दुनिया के बड़े माने-चुने व्यक्ति हैं।"

"देवी ! ये काम क्या करते हैं ?"

"केवल डाके डालते हैं। लाखों जनों की मेहनत पलों में लूट लेते हैं।"

"इनके पास बड़े हथियार होंगे ?"

"हाँ, उन हथियारों से ये बनाते कुछ नहीं, छीन लेना और मारना ही जानते हैं।"

"पर देवी, यदि तुम्हारी बहन कभी तुम्हें स्पर्श कर ले ?"

"वह मुझे स्पर्श नहीं कर सकती, वह मुझे हर तरह दुःखी कर सकती है। मेरे वस्त्रों के तारों में से जो आलोक निकलता है उससे उसकी आँखों में धुंधलका छा जाता है और वह मेरे पास नहीं आ सकती। फिर मेरी साँस में से जो सुगन्ध आती है उससे वह घबरा जाती है और मुझसे दूर हट जाती है। यह बात न होती तो मुझे वह कभी की डस गई होती! जो ईर्ष्या उसे मुझसे है, वह शायद संसार की और किसी वस्तु से नहीं। भले ही मुझे छू नहीं सकती पर उसने हर तरह मुझे दुःखी कर दिया।"

"मेरी देवी!"

"सदियाँ गुज़र गईं। मैं अपने प्रिय से मिल नहीं सकती।" देवी स्त्री के मुँह पर रुलाई-सी आ गई।

"तुम्हारा प्रिय ?"

"मेरे सभी रास्तों में उस विषकन्या ने ज़हर बिखेर रखा है।"

अब मुझे देवी की पीड़ा का पता लगा।

"कई बार मेरा प्रिय मेरे पास से निकल जाता है। विषकन्या अपना आँचल मेरे मुख के आगे फैला देती है और मेरा प्रिय मुझे पहचान नहीं पाता। सदियाँ गुज़र गईं, कई सदियाँ! मुझे यदि सदा-यौवन का वर न होता तो जाने मेरी क्या दशा होती! तूने अपनी दुनिया में नहीं देखा ?...मुहब्बत करने वाले कभी मंज़िल को नहीं पा सकते। मैं जिसे प्यार करती हूँ, जब तक वह मुझे नहीं मिलेगा, दुनिया में भी मुहब्बत करने वालों को अपनी मंज़िल नहीं मिलेगी।"

देवी ने अपने फूलों के तकिये का सहारा लिया। शायद उसकी पीड़ा बहुत बढ़ गई थी।

"मेरी देवी!" मेरे आँसुओं से मेरा मुँह भीग गया, "क्या सदियाँ

तू भी कभी आएगी ?"

"मेरा एक काम है।"

"कोई काम बताओ देवी, तुम्हारी पूजा करने वाले भी चिन्तित हैं। कोई काम बताओ, नहीं तो किसी दिन वे भी विष बाँटने जाएँगे।"

"जब कोई मेरे गीत गाता है तो जहाँ तक उन गीतों की आवाज जाती है वहाँ तक मेरी बहन का विष प्रभाव नहीं कर सकता।"

"तुम्हारे गीत मेरी देवी ! तुम्हारी पूजा करने वाले तुम्हारे गीतों को दुनिया के हर ज़र्रे में गूंजा देंगे।"

"कभी-कभी कुछ बड़े अच्छे-अच्छे व्यक्ति पैदा होते हैं। वे मेरे गीत रचते हैं। और लोग जब उन गीतों को पढ़ते हैं तो लोगों के रास्तों पर फूलों के झूमर झूमने लगते हैं। पर जब लोग विषकन्या में से विष की बूंदें चख लेते हैं तो वे मेरे गीत गाना बन्द कर देते हैं। और जब लोग मेरे गीतों को भूल जाते हैं, तभी मेरी बहन मौत का नाच नाचती है। मेरी बहन मनुष्यों की खोपड़ियों में विष भर-भरकर लोगों को पिलाती है, तो नशे में मस्त होकर वे मनुष्य के रक्त में अपने हाथ रंग-रंगकर हँसते हैं और मौत का नाच नाचते हैं।"

"मैं लोगों के अधरों पर तुम्हारे गीत बिखेर दूंगी। उन अच्छे व्यक्तियों ने तुम्हारे बड़े अच्छे गीत रचे होंगे, मुझसे वैसे न भी रचे जा सकें तो भी मैं तुम्हारे गीत लिखूंगी।"

"मेरे गीत हृदय के रक्त से लिखने पड़ते हैं मेरी प्रिय !"

मैंने देवी स्त्री के मुंह की ओर देखा तो मेरी आंखों ने कहा, "तुम्हारी आज्ञा मुझे किसी भी मूल्य पर स्वीकार है।"

देवी स्त्री के उस फूलों वाले महल में एक तालाब कमल के फूलों से भरा हुआ था। उसके किनारे खड़ी होकर एक खिले हुए नील कमल की ओर उंगली उठाकर उसने कहा, "इसमें देखो !"

मैंने उस कमल के खिले हुए हृदय में देखा।

"कुछ दिखाई दिया ?"

"हाँ देवी, एक ऐसा मुखड़ा जो सारी उम्र भुलाया न जा सके।"

"हाँ, सारी उम्र नहीं भूल सकेगा, प्रिय !"

"इस कमल में झाँककर जो भी देखता है उसे वह चेहरा दिखाई देता है ?"

"नहीं प्रिय, जिस तरह पानी में देखने वाले को केवल अपना मुख ही दिखाई देता है, उसी तरह इस फूल में हर किसी को अपनी-अपनी मंज़िल दिखाई देती है।"

"इस फूल को नील कमल ही कहते हैं ?"

"नहीं, इस फूल को कल्पना भी कहते हैं।"

"यह मुख"'मेरी मंज़िल !"

"आश्चर्य की छाया में भय की परछाईं मिल गई और मैं दोनों में खो गई।"

"तुम्हारी आँखों में सदा के लिए इसकी प्रतीक्षा भर जाएगी और इसकी याद जब भी तेरे दिल में तड़प पैदा करेगी तेरे दिल से लहू फूट निकलेगा। मेरे गीत उसी रक्त के पवित्र रंग में लिखे जाते हैं मेरी प्रिये !"

"मैं इस मुख को कभी न देख सकूँगी ?" यह पहली सच्ची तड़प थी जिससे मैं काँप गई।

"नहीं प्रिये, कभी नहीं, न तू न कोई और ही अपनी मंज़िल का मुँह देख सकता है। हमारे रास्तों पर नाग बिछाये हुए हैं। मेरी ओर नहीं देखती तू ? सदियाँ गुज़र गई हैं "

मेरी आँखों में सैकड़ों आँसू भर आए और मैंने उसके सारो-भरे आँचल को अपनी आँखों पर रख लिया। फिर मुझे सुध न रही।

जब मेरी आँख खुली तो न वहाँ फूलों का महल था न वह देवी ही थी। मेरे सिरहाने वही लैम्प था, और वही पुस्तक पड़ी थी।

कई वर्ष बीत गए हैं। नील कमल में देखा हुआ मुखड़ा मुझे उसी तरह याद है। मेरी आँखें भर-भर आती हैं, तड़प सही नहीं जाती, और मैं अपनी कलम को अपने हृदय के रक्त में भिगो लेती हूँ।

पानी का प्याला

सूखे गले मुश्किल से गाना गा लिया। यद्यपि वह चीड़ के पेड़ों से भरा हुआ जंगल था और हल्की-हल्की सर्दी हमारे कोटों में से गुज़रकर हमारे शरीर को छू रही थी, पर पानी की प्यास पानी की प्यास है।

जेठ का महीना अन्तिम सांस ले रहा था और सभी पहाड़ी कुएँ जैसे सूखी जबान से हांफ रहे थे। जहां किसी ने बताया कि कुएं में से पानी निकल रहा है, हम टांगें घसीटते वहां जा पहुँचे। पर वहां भी यह नहीं कहा जा सकता था कि उसमें से पानी निकल रहा है। कोई-कोई बूंद कभी टपकती थी, जैसे वह कुआं एक-एक बूंद गिनकर अपने खत्म होते हुए खजाने में से निकाल रहा हो। उसके मुंह के पास थोड़ा-सा पानी इकट्ठा हो गया था, और बकरियां चराने वाले पहाड़ी लड़के उसमें से ओक भरकर पी रहे थे। पर हमसे उसका एक घूंट न पिया गया।

कुछ दूर चीड़ के पेड़ों में छिपे हुए एक घर की झलक दिखी।

"पता करूं, अगर उस घर में से पानी मिल जाए," मैंने कहा।

पेड़ों के झुण्ड में एक समतल स्थान ढूंढकर सभी ताश खेलने लग गए और मैं अकेली उस घर का रास्ता ढूंढकर पानी का पता करने के लिए चली गई।

खिले हुए फूल आपको कई जगह मिल जाएँगे, पर मनुष्य का खिला हुआ मुख आपको कभी-कभी ही कहीं दिखाई देता है। जिस स्त्री ने घर का दरवाजा खोला, उसका मुख सचमुच फूलों को मात करता था।

"पानी ढूंढ़ती हुई मैं आपके घर आई हूँ।"

"इस मुझे कुछ कहानियों का ढेर पहले भी कई बार शुरू किया है। इन दिनों मेरा दावों अक्सर लोगों को परेशान कर जाता है।"

केवल चन्द्रो-देवी कुछ ही नहीं था, इस स्त्री के स्वर में एक-एक के ईमान ... के देवों के इस ... में यह ... किया हुआ था।

"तुम देर तक बैठ जाओ। मेरा मोटर वाली अभी चला ही जाना। पास ही बाई में बोतल रखता है। सम्भव मैंने भी उधार ली। इसके पहले बड़ी चाबी वाली मिलना।"

याद है मैं वहीं कहीं था नई थी! उसका कमरा दूसरों से ... हुआ था। उसमें मुझे इतनी ... की सुगन्ध ... है। और मैंने एक और लिख दिया कि इस स्त्री का मूल्य इतना बड़ा ... था।

जब उसने मुझसे कुछ मेरे बारे में पूछा तो जो बात मैंने साधारण से परिचय में किसी से नहीं कही, उससे कही, "मैं लिखता हूँ।"

"और—मैंने कभी कोई नहीं लिखे। पर मैंने वह रास्ता देखा है जिस पर से लोग अक्सर जाते हैं।"

मेरे मन में जैसे उतरकर उस स्त्री ने मन को आलिंगन में ले लिया। यह पहला स्पर्श की शुरुआत थी कि उस स्त्री ने मेरा हाथ पकड़ा और मुझे अपने साथ के कमरे में ले गई।

उस कमरे में एक बहुत प्यारा बिस्तर था—इतना [illegible] जैसे रात के समय सारे संसार की शान्ति वहीं सोती हो।

उस कमरे में एक बहुत सुन्दर चित्र था, जैसे सारे संसार के पुरुषों का सौन्दर्य उसमें इकट्ठा हो गया हो।

"यह आपके पति ?"

"यदि एक शायद पूर्ण नहीं होता, मेरा रिश्ता पूर्ण था।"

"क्यों ?"

"दो वर्ष हो गए हैं, जिन्दगीभर इस संसार से चला गया।"

"मेरे कुछ मिनट के इस परिचय को अधिकार नहीं है आपसे कुछ पूछने का, पर···आपकी बात मेरे दिल के कानों में कुछ कहे···"

कमरे में एक कालीन बिछा हुआ था। हम दोनों वहीं बैठ गईं।

"बीस वर्ष की थी, मेरा मन जिस रास्ते पर गया, मेरी डोली उस रास्ते पर न गयी।

"विवाह की मेंहदी लगने वाली थी, जब मेरी सहेली ने मेरे कानों में कुछ कहा। जिसे प्यार करती थी, उसे मैंने एक सन्देशा भेजा था कि भाग्य की रेखाओं को मैं मिटा नहीं सकती, पर एक बार आकर इन गलत रेखाओं वाली हथेली पर अपने हाथ से मेंहदी लगा जाओ···

"एक अलग कमरे में गयी। मेंहदी की कटोरी उसने एक तरफ़ सरका दी और अपनी कलम से अपने अंगूठे पर स्याही लगाकर उसने मेरी हथेली पर वह अंगूठा लगा दिया।"

"मेरी हथेली के कागज़ पर यह जो अंगूठा लगाया है, उसे मैं क्या करूंगी ?···अब मैं किस अधिकार से तुमसे कुछ मांगूंगी ?" मेरे आंसुओं ने उससे पूछा।

"चाहे आज मांग लो और चाहे बीस वर्ष बाद मांग लेना—तुम जब भी यह कागज़ लेकर मेरे पास आओगी, मैं तुम्हारा अधिकार तुम्हें दे दूंगा," उसने कहा, और वह चला गया।

अपनी उस हथेली को मैंने माथे से लगा लिया। और दूसरी हथेली पर मेंहदी लगाकर मैंने विवाह की चूड़ियां पहन लीं।

"कई वर्ष ?

"हां, कई वर्ष ! मेरे एक बच्चा हुआ। जब वह छोटा था तो उसकी देखभाल में मेरा दिन निकल जाता था, पर वह ज्यों-ज्यों बड़ा होता गया, अपने पैरों पर खड़ा होता गया, और मुझे जीने का साहस कुछ अधिक ही करना पड़ा।

"घर, अच्छा अमीर घर था। इसलिए परदों की बहुत सी तहों की ओट थी। न हम कहीं जाते थे, न कोई हमारे यहां आता था। और जो कुछ अमीर लोग मिलते थे, उनके मिलने को सही अर्थ में मिलना नहीं कहा जा सकता।

"घर के सामने चाय की एक दुकान थी। पास ही बस का अड्डा

था। दो-चार महीनों के बाद यहाँ कव्वालों की एक मण्डली आती थी। बड़े मशहूर कव्वाल थे। उन्हें यहाँ दम बदलनी होती थी। दो घंटे वे यहीं अड्डे पर बैठे रहते। चाय की दुकान वाला बड़ा रंगीन तबीयत वाला आदमी था। सभी कव्वालों को मुफ्त चाय पिलाता, और फिर उनसे एक कव्वाली सुनता।

"खिड़कियों के पर्दे उठाने का हम स्त्रियों को हक नहीं था, पर कव्वालों की आवाज उन पर्दों में से गुजर जाती थी। और दिन-भर लगातार जिन चीजों को मैं ठीक तरीके से रखती, उन्हें अपने हाथ से उलट देती।

"कभी-कभी मैं नौकर को पैसे देती और कहती, 'जाकर अपना नाम लेना, मेरा नाम न लेना।'…उन कव्वालों को चाय पिलाना और कहना कि एक कव्वाली और गाएँ।'

"[illegible] के हाथों में बिकते हुए मुझे लगभग बीस वर्ष हो गए थे। मैंने सुना, वह बीमार हो गया है—वही, जिसने मेरे हाथ के कागज पर अपना अँगूठा लगाया था और कहा था, 'चाहे आज माँग लो और चाहे बीस वर्ष बाद, यह कागज ले आना, मैं तुम्हारा अधिकार तुम्हें दे दूँगा।' यह मुझे पता था, उसने विवाह नहीं किया था। उसकी बस एक माँ ही उसके साथ थी और अब उसकी बीमारी के मौके पर वही उसका सहारा थी।

'दिन-भर मैं अपनी हथेली को देखती रही। मुझे लगता, एक अँगूठे का निशान अब उस पर उभर रहा था, जैसे कई वर्ष बाद कोई जख्म फूट पड़ा हो…

"उस दिन फिर कव्वाल आये थे। चायवाले ने उन्हें चाय पिलायी थी और वे गा रहे थे, जिसका भावार्थ था—

'मैं कातती रही, बुनती रही, पर एक गज कपड़ा भी न फाड़ा,
मैंने कोरा कपड़ा ही पहना, किसी को रंगदार नहीं किया।'

"कव्वाल तो गाकर चले गए, पर गीत को यहीं छोड़ गए। और मुझे लगा, वह गीत सीढ़ियाँ चढ़कर मेरे पास आकर खड़ा हो गया था।

मेरा हाथ पकड़कर मेरी हथेली पर बने हुए अँगूठे को देख रहा था, और फिर जैसे उसके अँगूठे का निशान गाने लगा—

'मैं कातती रही, बुनती रही पर एक गज़ कपड़ा भी न फाड़ा।'

"बीस वर्ष मैं दूसरों का घर सजाती रही, हर काम के धागों को मैं कातती रही, बुनती रही, पर स्वयं मैंने मैंने कुछ भी पहनकर नहीं देखा था। और मैंने बीस वर्ष बाद जीवन के थान में से एक गज़ कपड़ा फाड़ लिया।"

"सच ?"

"हाँ, मेरी बहन, सच···दौलत और इज़्ज़त की क़ीमत चुकाकर मैंने एक गज़ कपड़ा ख़रीद लिया।

"वह सैनेटोरियम में पड़ा हुआ था। मैंने उसके पास जाकर उसके सामने अपनी हथेली रख दी, 'यह देखो अपने अँगूठे का निशान। यह निशान और किसी को नहीं दिखता, यह मुझे ही दिखाई देता है। तुम्हें भी दिखाई देगा। मैं अपना हक़ लेने आई हूँ।'

" 'मेरे पास अब जीवन के बहुत थोड़े-से दिन हैं। तुम इनके लिए इतनी बड़ी क़ीमत न चुकाओ।' उसने बहुतेरा कहा, पर मेरी एक ही प्रार्थना थी, 'जीवन के थान में से मुझे एक गज़ कपड़ा दे दो, बस एक गज़···'

"कोई कहेगा, एक गज़ कपड़ा क्यों ? मैं जीवन का पूरा थान ले सकती थी। यह जो चीज़ मैंने आज माँगी थी, बीस वर्ष पहले ही माँग सकती थी। पर अब मैंने अपनी इज़्ज़त और अपने सुखों की क़ीमत दी। तब मेरे माता-पिता की इच्छा का सवाल था। और उनकी इच्छा को क़ुर्बान करना मैंने अपना हक़ नहीं समझा था।···पर यह भी कोई जवाब नहीं। वे सारी ही क़ीमतें ग़लत थीं, पर जीने के बिना भेद नहीं मिलता। मैंने उन क़ीमतों के लिए अपनी जवानी क़ुर्बान कर दी, अपने प्रियतम की सेहत क़ुर्बान कर दी। और अब न मेरे पास जवानी थी, न मेरे प्रियतम के पास सेहत थी। पर अब मैं उसकी बीमारी के दिनों को क़ुर्बान नहीं कर सकती थी···।"

उस स्त्री का मैंने मुख देखा था, कुछ शब्द सुने थे और मेरे मन ने उठकर उसके मन का आलिंगन कर लिया था। जवानी और सेहत को कुर्बान करने वाली, बुढ़ापे और बीमारी को खरीदने वाली वह स्त्री अब उस ऊँचे शिखर पर खड़ी थी, जहाँ हाथ नहीं पहुँचना था। मेरा सिर झुक गया।

"डॉक्टरों ने मुश्किल से छः महीने की आशा दिलायी थी। पर जीवन को मुझ पर कुछ तरस आ गया। इसी घर में, इसी कमरे में, मैंने उसके साथ छः वर्ष बिता लिए। चीड़ के वृक्षों की इस छाँव में मैंने छः वर्ष तक वह एक सब्ज कपड़ा पहनकर देख लिया।

"मेरा सफर और लम्बा न होता, पर उसकी माताजी अभी जीवित हैं। वे मुझे अपना बेटा भी कहती हैं, बेटी भी कहती हैं, बहू भी कहती हैं..."

"यहीं हैं आपके साथ?"

"हाँ, यह घर हमारी स्मृतियों का घोंसला है। दिन-भर चीड़ के पेड़ों के नीचे बैठकर वह मुझे अपने बेटे की बातें सुनाती है। न कभी मेरे कानों की तृप्ति हुई है, न कभी उनकी बातें खत्म हुई हैं।"

"एक पल मैं उन्हें देख सकती हूँ?"

"मैं देखती हूँ, अगर सो न रही हों।"

माँ सोयी पड़ी थी और नौकर पानी लेकर आ गया था। मैंने आवश्यकतानुसार पानी ले लिया। वहाँ से लौटते हुए मुझे लगा, जैसे उस स्त्री ने आज केवल प्यासे यात्रियों को पानी का घूँट न दिया हो, बल्कि सदियों की भटकती हुई मुहब्बत के होंठों से पानी का प्याला लगा दिया हो।

धुआँ और लपट

हरदेव ने जब नीला तहमद उतार-कर पैंट पहन लिया और टाई की गांठ लगाने लगा तो उसे लगा कि पिछले सात दिनों वाला हरदेव कोई और था और आज का हरदेव कोई और। पिछले सप्ताह वाले हरदेव को उसने चौंककर आवाज़ दी, "देव…!" देव उसने इसलिए कहा कि सारा सप्ताह अह्मी उसे देव कह-कर ही पुकारती रही थी। हरदेव कहना उसे मुश्किल लगा था।

"हाँ, हरदेव!" देव की आवाज़ आई।

"मुझसे ऐसे बिछुड़ जाएगा, दोस्त?"

"शायद बिछुड़ना ही पड़े हरदेव, हम एक धरती पर रहकर भी एक ही धरती के आदमी नहीं लगते।"

"मैं तेरा इतना ग़ैर हूँ?"

"ग़ैर? हाँ ग़ैर ही कह सकता हूँ। मुझसे तू पहचाना भी नहीं जाता।"

"वस्त्रों के रंग और उनकी बनावट इतना अन्तर डाल देती है?"

"नहीं हरदेव, सिर्फ़ वस्त्रों की बात नहीं। तू एक लेखक है, लेखक भी वह जिसका नाम हज़ारों आदमियों की ज़बान पर है, और मेरा नाम…मेरा नाम शायद अह्मी के सिवा और कोई नहीं जानता।"

हरदेव को उसकी बात पर कुछ ईर्ष्या-सी हुई। एक बार तो इच्छा हुई कि कहे—देव, मेरे दोस्त! तू मुझसे कहीं अधिक भाग्यशाली … हज़ारों लोग मेरा नाम लेते हैं, पर मुझे कभी नहीं लगा कि मुझे …ज़रूरत है। तेरा नाम कोई नहीं लेता, सिर्फ़ अह्मी ने इस पिछले

सप्ताह-भर तेरा नाम लेकर तुझे पुकारा है, और तुझे लगता है कि वहाँ तुझे जानती है। पर सचमुच हरदेव ने कुछ कहा नहीं।

"इतनी उदासी क्यों हरदेव ? हर शहर तेरी बाट देखता है, हर कॉलिज तुझे सम्मान देता है। कल धर्मशाला के गवर्नमेंट कॉलेज में तेरा स्वागत होना है। कितने ही लड़के-लड़कियाँ तेरे इर्द-गिर्द घूमेंगे कितनों की तेरे साथ बातें करने की इच्छा होगी। कापियों का झुरमुट तेरे चारों ओर मँडराएगा कि तू उन पर अपना नाम लिख दे। कितनी लड़कियाँ जब अपने दोस्तों को पत्र लिखेंगी तो तेरे गीत लिख-लिखकर अपने हृदय की बात कहेंगी ! तुझे याद नहीं, तेरा नाम सुनकर तेरी सीट बुक करने वाले क्लर्क का चेहरा चमक उठा था ? प्लेटफार्म पर घूमते लोग डिब्बे के बाहर तेरा नाम पढ़कर तुझे देखने के लिए जमा हो गए थे ?"

"कुछ न कहो देव ! यह सब ठीक है, पर इससे हृदय में पड़ा हुआ गड्ढा नहीं भरता।"

"फिर ?"

"तू मेरे साथ चल। जहाँ मैं रहूँगा, तू भी रहना। मैं अपने कामों की भीड़ से फुरसत पाकर तेरे साथ बातें किया करूँगा। मैं बहुत अकेला हूँ, बिलकुल अकेला। सैकड़ों लोगों की भीड़ में भी अकेला, हजारों लोगों की भीड़ में भी अकेला। मैं तुझसे अपने मन की बात किया करूँगा।

"मुझे तेरा शहर और तेरी सभ्यता झेल नहीं सकती, हरदेव ! तेरी जबान भी तो मेरी समझ में सदा नहीं आती। तू कभी हिन्दुस्तानी कविता की बातें करता है, कभी अंग्रेजी और रूसी कविता की। अनेक तू उनके नाम रखता है—कभी रोमांटिक कहता है तो कभी छायावादी, कभी यथार्थवादी तो कभी प्रतीकवादी, कभी प्रगतिशील तो कभी परम्परावादी और मेरी समझ में कुछ नहीं आता…"

हरदेव ने सिर झुका लिया। पिछले कितने ही दिन उसे याद हो आए। बरसों से उसके भीतर एक धुआँ सुलगता रहा है और पिछले कुछ

गर्मियों में उसे लगा था कि अभी उस धूप में उसकी सांस घुटने लगी थी। धर्मशाला के गवर्नमेंट कॉलेज ने उससे अनुरोध किया था कि वह उनके कॉलेज में आकर तीन भाषण दे—एक प्राचीन भारतीय कविता पर, एक आधुनिक भारतीय कविता पर और एक दूसरे देशों के साथ भारतीय कविता की तुलना पर। उसने हाँ कर दी थी। आठ दिन वह पुस्तकों पर निरन्तर बैठा रहा था। कितने कागज उसने तैयार किये थे, और फिर पन्द्रह दिन के लिए समय निकालकर वह दिल्ली की शोर-गुल से भरी सड़कों को छोड़कर धर्मशाला के एक शालीन कोने में आ बैठा था। उसकी इच्छा थी कि दस-ग्यारह दिन एकान्त में रहकर जमाने से मन में पड़ी हुई कहानियों को टटोलेगा और गीतों को जन्म देगा और फिर अपने तीन भाषण खत्म करके दिल्ली लौट जाएगा।

लेकिन धर्मशाला के होटल का एकान्त कमरा भी उसके मन को चैन न दे सका। वह रोज सुबह बस में बैठ जाता और जिस गाँव में उसका दिल करता, उतर जाता। उसके साथ छोटा-सा थैला रहता था, जिसमें वह डबल रोटी, मक्खन, अण्डे और कुछ फल रख लेता, थर्मस में चाय डाल लेता, सिगरेट की दो डिब्बियाँ रख लेता, थोड़े-से कागज़ और एक क़लम संभाल लेता और खादी की नीली चद्दर और हवा तकिए को तह करके थैले में डाल लेता। जहाँ दिल होता, घूमता, जहाँ दिल होता अपनी नीली चद्दर बिछा, तकिये में हवा भरकर सो जाता। और साँझ तक फिर गाँव के समीप आ जाता और किसी गुज़रती हुई बस में बैठकर रात को होटल लौट आता। तीन दिन इसी तरह गुज़र चुके थे। चौथे दिन साँझ को वह सारा दिन पास के एक गाँव नूरपुर के खेतों में गुजारकर लौट रहा था तो एक चिकने पत्थर से उसका पैर ऐसा फिसला कि संभलते-सँभलते भी गिर पड़ा और चोट लग गई। टखना सूज गया और जहाँ बैठा था, वहीं बैठा रह गया। अंधेरा हुआ जा रहा था और उसके पैर ने एक भी क़दम आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया था।

अंधेरा साँवले से काला हुआ जा रहा था कि उसे पास ने

पेड़ से पत्ते तोड़ती एक लड़की दिखाई दी। वह सोच रहा था—उस लड़की के स्थान पर कोई मर्द होता तो वह आवाज़ दे लेता। उस लड़की ने पत्तों का एक गट्ठर बांधा और हाथ में लिये पानी के मटके को संभालती हुई उसके पास से गुज़री तो कहने लगी, "क्यों बाबू, रास्ता भूल गया?"

लड़की की बोली पहाड़ी थी, पर उसकी बात आसानी से समझ में आ जाती थी। हरदेव ने उसे बताने की कोशिश की कि उसके पैर में मोच आ गई है और वह चल नहीं सकता। हरदेव उसे आगे बताना चाहता था कि अगर वह गांव से किसी आदमी को भेज दे, तो वह उसके कन्धे का सहारा लेकर गांव तक पहुंच सकता है। लड़की ने पत्तों का गट्ठर वहीं छोड़ दिया और हरदेव का थैला अपने पानी के मटके पर रखकर उससे कहा कि वह उसके कन्धे का सहारा लेकर चलने की कोशिश करे।

कोई तगड़ा मर्द होता तो भी हरदेव उसका सहारा लेकर इतनी आसानी से नहीं चल सकता था जैसा कि उस युवती के कन्धे पर हथेली रखकर चल सका था। हर कदम पर उसे खयाल रहता था कि कहीं उसके कन्धे पर अधिक बोझ न डाल दे। अपने लँगड़ाते पैर की वह मिन्नत करता रहा कि कुछ तो सहन-शक्ति दिखाए। बेशक पैर लँगड़ाता था, पर आखिर वह एक मर्द का पैर था, और जब उसे एक लड़की के सामने ललकार पड़ी तो उसका दिल दुगुना हो गया।

काफ़ी गहरा अँधेरा घिर आया था जब हरदेव गांव की सीमा में पहुँचा। युवती उसे अपने घर ले गई।

"मैं तुझे क्या कहकर पुकारूँ?" हरदेव ने पूछा था।

"मेरा नाम प्रझी है, बाबू!"

"तू मुझे बाबू क्यों कहती है? मेरा नाम हरदेव है।"

"तेरा नाम बड़ा मुश्किल है, बाबू!"

"मुश्किल है? तू आसान बना ले" कह तो, देव!"

"देव," प्रझी ने कहा।

"यहाँ गांव में कोई सराय या मन्दिर होगा ? मैं वहाँ जा रहूँगा।"

अह्ली ने कुछ नहीं कहा। पर जब उसे दरवाज़े के आगे छोड़कर वह भीतर चली गयी, तो कुछ क्षण भी नहीं बीता था कि अह्ली के बापू ने आकर हरदेव का बाज़ू पकड़ लिया। "कोई फ़िक्र की बात नहीं, बाबू! हफ़्ता-भर यहीं रहो, पैर सेंकेंगे, कल ठीक हो जायेंगे।"

वह कल अगले दिन नहीं आया। उससे अगले दिन भी नहीं। हरदेव के पैर की सूजन तीन दिन वैसी ही रही। अह्ली का बापू हर रोज उसके पैर पर गरम तेल की मालिश करता और फिर कसकर बांध देता। हरदेव को यह भी ख़याल आया था कि किसी बसवाले के हाथ पत्र भेजकर अपने होटल में ख़बर कर दे, किसी डॉक्टर को बुलवा ले, या अपने होटल में से कुछ चीज़ें ही मँगवा ले। पर फिर उसे लगा कि यह सब-कुछ अह्ली की सेवा का निरादर है। वह जिस खाट पर पड़ा था, वहीं पड़ा रहा। अपनी नीली चद्दर को उसने तहमद बना लिया था। रोज दोपहर के समय अह्ली उसकी कमीज़ धो देती। ख़ालिस ऊन के दो पट्टू अह्ली के बापू ने उसकी खाट पर बिछा दिए थे। अह्ली की माँ उसके लिए चावल उबालती, दाल बनाती, पेठे की सब्जी बनाकर देती, फिर भी अह्ली को सन्तोष नहीं होता था। उसने अपने पड़ोसियों को धान और मक्की देकर थोड़ा-सा गेहूँ का आटा ले लिया था, जिसकी वह रोज़ पतली-पतली रोटियाँ सेंकती थी।

चार दिन बाद हरदेव के इतनी शक्ति आ गई कि वह खाट से उठकर अह्ली के चूल्हे के पास आकर बैठ जाता। गीली लकड़ियाँ बार-बार धुआँ छोड़तीं, अह्ली रोटी बनाती और हरदेव लकड़ियों को फूंकें मारता।

दीपावली समीप आ रही थी। अह्ली की माँ अपने मिट्टी के घर को लीपने-पोतने लगी। हरदेव को पहली बार गीली मिट्टी की सुगन्ध इतनी प्यारी लगी, उसे महसूस हुआ जैसे इसके आगे सब सुगन्धियाँ तुच्छ हों। आँगन लीपकर अह्ली की माँ ने गेरू घोलकर सारे आँगन में किसी के पैरों के निशान बनाने शुरू कर दिए।

"यह क्या ब्रह्मी ?" हरदेव ने पूछा।

"माँ कहती हैं, इन्हीं निशानों पर पैर रख-रखकर लक्ष्मी आएगी," ब्रह्मी ने बताया।

हरदेव का मन उसके भोले विश्वास के प्रति सम्मान से भर गया, पर उसने हँसकर फिर पूछा, "सच ब्रह्मी ? लक्ष्मी आयेगी ? मुझे दिखाओगी ?"

न ब्रह्मी ने कभी लक्ष्मी आती देखी थी, न उसकी माँ ने, और न ब्रह्मी की माँ की माँ ने ही देखी होगी। ब्रह्मी हँस पड़ी, "लक्ष्मी भी कभी दिखाई देती है ?"

"हाँ, कभी-कभी नज़र आती है," हरदेव ने कहा।

"कब ?"

"जब वह दिखाई देती है, उसका नाम बदल जाता है।"

ब्रह्मी उसके मुँह की ओर देखती रह गई।

"कभी-कभी उसका नाम ब्रह्मी भी हो जाता है," हरदेव ने कहा। सुनकर ब्रह्मी के मुँह पर जो झेंप आई और उसका मुँह जिस तरह सुलग उठा, हरदेव को ऐसा लगा कि उसने संसार-भर के चित्रकारों की कला देखी थी, पर ऐसा पवित्र रूप कहीं नहीं देखा था।

ब्रह्मी के बापू ने अपने बाबू के स्वागत के लिए एक दिन शहर से डबल रोटी और अण्डे मंगवाए। हरदेव मिन्नतें करता रहा कि अब उसे मक्की की रोटी और उबले हुए चावलों से बढ़कर कुछ अच्छा नहीं लगता, पर ब्रह्मी को और उसके घरवालों को अपनी मेहमान-निवाज़ी काफी नहीं लग रही थी।

ब्रह्मी ने आग जलाई। हरदेव ने तवा रखकर ब्रह्मी को अण्डे बनाने बताए। ब्रह्मी चाय बना रही थी। लकड़ियाँ बुझ-बुझ जाती थीं। हरदेव ने कितनी ही फूँकें मारीं, पर धुआँ होता जा रहा था। ब्रह्मी ने एक ज़ोर की फूंक लगाई धुएँ के बादल में से एक लपट निकली और चूल्हे के पास झुकी हुई ब्रह्मी का मुँह चमक उठा। पहली बार हरदेव को लगा कि बरसों से उसके मन में जो धुआँ सुलगता रहता

था, शायद किसी ने उसे ऐसी फूंक मारी थी कि उसमें से रोशनी की एक नई लपट निकल पड़ी थी और उस लपट में अह्मी का मुंह चमक रहा था। एक लड़की नहीं थी, मनुष्य का पवित्र प्यार थी।

अगले दिन अह्मी ने एक अजीब बात की। उसने हरदेव से पूछा, "देव बाबू, तुमने कहा था न कि लड़की जब विदाई लेती है, उसका नाम बदल जाता है?"

"हाँ।"

"कभी-कभी लड़की मर्द भी बन जाती है?"

यह पहला अवसर था जब हरदेव को उत्तर देने के लिए कुछ नहीं सूझा। वह अह्मी के मुंह की ओर देखता रह गया।

हरदेव के हुक्के-नालिये में अह्मी बड़े चाव से फूंकें लगाती और जब वह भर जाता, हरदेव उसके साथ इस तरह मुंह लगा लेता, जैसे उसमें से अह्मी की सांस आ रही हो।

सोच में डूबे हरदेव ने सिर उठाया; देव उसके सामने खड़ा था। हरदेव ने अपनी गरम सलेटी पैंट पहन रखी थी और देव ने अपनी कमर के गिर्द नीली तहमत बांध रखी थी।

"देव!"

"हां दोस्त!"

"तू मेरे साथ नहीं चलेगा?"

"मेरे लिए और कहीं जगह नहीं हरदेव, मैं यहीं रहूंगा।"

"यहां? अह्मी के घर? क्या करेगा यहां?"

"अह्मी जंगल के चश्मे से अकेली पानी लेने जाती है, मैं उसके साथ जाया करूंगा। वह खेतों में जाकर धान काटती है, मैं उसका गट्ठर उठाया करूंगा। वह चूल्हे के आगे बैठकर रोटियां सेंकती है, मैं आग जलाया करूंगा।"

"वह थोड़े दिन बाद ससुराल चली जाएगी?"

"मैं उसकी डोली के साथ जाऊंगा। वह अपना नया घर बनायेगी,

मैं उसे सजाया करूँगा।"

"पर देव, तेरा उसके साथ रिश्ता क्या होगा ?"

"यही तो दुनिया वालों की बुरी आदत है कि वे आदमी का आदमी के साथ रिश्ता जानना चाहते हैं। वे आदमी को पीछे देखते हैं, रिश्ते को पहले। क्या औरत का मुँह औरत का नहीं होता ? क्या वह ज़रूर माँ का मुँह होना चाहिए ? बहन का मुँह होना चाहिए ? बेटी का मुँह होना चाहिए ? बीवी का मुँह होना चाहिए ? औरत का मुँह औरत का क्यों नहीं रह सकता ?"

"तू ठीक कहता है, देव, मेरे पास इसका कोई उत्तर नहीं।"

"कम-से-कम तुझे यह सवाल नहीं पूछना चाहिए।"

"मैं कुछ नहीं पूछता।"

"आज तूने अपने हवा-तकिये को खाली नहीं किया, हरदेव ?"

"इसे ब्रह्मी ने अपने हाथों से भरा है।"

"तो फिर ?"

"जितने दिन हो सका उसकी साँस के साथ सिर लगाकर साँस लूँगा।"

"कितने दिन हरदेव ? तेरी दुनिया की हवा इस दुनिया से अलग है। वह सभ्यता की हवा है। उसमें हर समय घृणा और युद्ध के कीटाणु होते हैं। यह सभ्यता की दौड़ में पीछे छूट गई दुनिया की हवा है, इसमें मूँजी और मक्की की बालियाँ साँस लेती हैं। तेरी दुनिया की हवा में ब्रह्मी की साँस घुट जाएगी।"

हरदेव ने कुछ नहीं कहा, तकिये का पेंच खोल दिया। ब्रह्मी की साँस ने एक बार हरदेव की साँस को स्पर्श किया, फिर मक्की की बालियों को छूकर आती हवा में मिल गई।...

आरती

कोठरी के आगे कोठरी, उसके आगे और कोठरी, आगे एक गुफा। दीये की मद्धम-सी रोशनी में हम रास्ता टटोल रहे थे। रास्ता चिपचिपा-सा था। नौ सदियों की धूल इस रास्ते पर से गुज़र चुकी थी। रोज़ पूजा का घी और दर्शकों के पाँव इस रास्ते पर से गुज़रते थे। और गुफा में अन्नपूर्णा की मूर्ति थी।

"मेरी सांस घुट रही है। इस गुफा में अन्नपूर्णा ने कैसे नौ सौ साल काट लिए......"

शुक्र है, मेरी भाषा पुजारियों को समझ नहीं आती थी। वैसे भी वे दूसरे की बात सुनने की बजाय अपनी ही सुना रहे थे। "पैसा माँ पैसा, पैसा..."

कितनी ही कोठरियां, कितनी ही मूर्तियां, कितने ही पुजारी। और सभी पुजारी आपस में झगड़ते थे। दर्शक को वे जैसे ज़बरदस्ती खींचकर अपनी मूर्ति का दर्शन कराना चाहते थे। और फिर जैसे हाथ डालकर उसकी जेब में से कुछ निकाल लेना चाहते थे।

बाहर आने पर मेरे साथी कहीं से ठंडे पानी का गिलास लाए, सुपारी लाए, लौंग लाए और मुझे सुख की सांस आई।

"इस मन्दिर का नाम है लिंगराज। कोई और मन्दिर देखेंगे?"

"अन्नपूर्णा बहुत सुन्दर है, पर वह भयानक क़ैद में पड़ी हुई है। अगर कोई ऐसा मन्दिर हो, जहां कला की मूर्ति हो, पर कोई पुजारी न हो......"

"यहाँ भुवनेश्वर से कोनार्क लगभग चालीस मील है। बारहवीं

शताब्दी की मूर्तिकला'''कोई पूजा नहीं, पुजारी नहीं।'' "

चालीस मील बहुत नहीं थे। सड़क के दोनों ओर नारियल के पेड़ थे, बांस के झुंड थे, केले के चौड़े पत्ते थे और पान की बाड़ियां थीं।

"आगे इस मन्दिर के पैरों तले समुद्र बहता था। वह अब स्वयं चला गया है, पीछे रेत छोड़ गया है।"

मन्दिर सूर्य देवता का था। आगे सात घोड़े जुते हुए थे, पीछे रथ के पहिये। सोलह सौ फुट की ऊंचाई। पता नहीं पत्थरों को तराशते में कितने तेशे, कितनी छेनियां और कितने हुनरी हाथ लगे होंगे।

सामने नृत्य-मन्दिर था। चारों ओर नर्तकियां। शेर और हाथी दरबानों की तरह खड़े थे।

"कमाल है, नर्तकियों के केवल होंठ ही नहीं, उनकी मुस्कराहट भी पत्थरों में रूपमान की गई है।"

"बाएँ हाथ जो यह सँभाले हुए हैं। ये कभी मन्दिर के माथे पर लगे हुए थे।"

किसी पुजारी के कहने पर सिर नहीं झुकना था। आज हुनर के आगे सिर स्वयं ही झुक रहा था।

लौटते समय मैंने पूछा, "यहां इर्द-गिर्द इलाके में कोई और देखने योग्य चीज़ है?"

"मन्दिर या मूर्ति तो कोई नहीं, यहां नज़दीक ही झोपड़ी में एक स्त्री रहती है। मारती उसका नाम है। वह चित्रकार है। उसकी चित्रकला देखने योग्य है।"

नारियल के वृक्षों में एक झोपड़ी थी। मैंने दरवाज़े पर दस्तक दी।

लगभग साठ वर्ष की एक स्त्री ने दरवाज़ा खोला। जैसा तेज उसके चेहरे पर था, वैसा तेज कम चेहरों को नसीब होता है। सांवले रंग में एक चमक गुंथी हुई थी।

झोंपड़ी एक अंगूठी की तरह थी और कितने ही चित्र उसमें नगों की तरह जड़े हुए थे। पहला चित्र ही ऐसा था कि उसने जैसे हाथ पकड़कर मुझे रोक लिया। मुश्कि[illegible] चित्र के पास पहुँची।

मन भी जैसे मुझसे बातें करने लगा।

मुझे लगता है, कला जैसे अपने कलाकारों के यहाँ घूमती हुई आपके पास आई। यहाँ फिर आगे जाना ही भूल गई।

साठ वर्ष की आरती मुस्करायी। कहने लगी, "कला नहीं, पीड़ा।"

यह कैसी झोंपड़ी थी। यहां आरती रहती थी, पीड़ा रहती थी, कला रहती थी।

सभी साथी बाजार के एक छोटे-से होटल में चाय पी रहे थे। आरती के पास मैं अकेली गयी थी। आरती दो नारियल लाई। दोनों का मुंह खोला। और हम दोनों उनका दूधिया पानी पीने लग गई।

"यहां बहुत दूर-दूर से लोग आते हैं, विदेशों से भी आते हैं। आपकी कला देखते हैं, प्रशंसा करते हैं, ख़रीदते हैं। शायद एक बात आपसे पहले भी किसी ने पूछी हो, पर मेरे मन में एक बात है जो मैं आपसे पूछना चाहती हूं।"

"क्या ?"

"इस कला के लिए आपने केवल एक रंग ही क्यों चुना है ?"

आरती के आकाश-जैसे साँवले चेहरे पर बिजली की एक रेखा चमक गई। आरती की सभी कृतियाँ काले रंग की थीं। और लगता था, जैसे पहले किसी ने उससे ऐसा रहस्यमय प्रश्न नहीं पूछा था।

"मैं पहले सभी रंगों का प्रयोग करती थी।"

"फिर ?"

"एक दिन मैंने सभी रंग फेंक दिए। केवल यही रंग अपने पास रख लिया।"

"कई साल हो गए होंगे ?"

"हाँ, लगभग पच्चीस साल। मुझे लगता था कि कोई और रंग मेरा साथ नहीं देगा। केवल यही रंग मेरे संग रहेगा।"

"इस रंग ने आपके साथ वफ़ा की और कला ने इस रंग के साथ वफ़ा की।"

"यह विरह का रंग है। इसकी वफ़ा पर कभी किसी को शक नहीं

हुआ।"

"हाँ, भारती, मेरे गीत इस बात की गवाही देते हैं।"

गीतों की बात चल पड़ी। कहानियों की बात लम्बी हो गई और फिर इन बातों ने भारती के मन की बातों को भी आवाज़ दी। भारती कहने लगी—

"तीस वर्ष, मेरी उम्र के ऐसे वर्ष हैं, जिन पर मैंने विवाह का शब्द नहीं लिखा था। एक दिन एक व्यक्ति आया—न मेरी जाति का, न मेरे देश का। मेरे चित्रों को देखना हुआ मेरे घर में कुरसी पर क्या बैठा कि मेरे दिल में बैठ गया।

"उसने हाथ बढ़ाया और मेरे जीवन के पृष्ठ पर विवाह का शब्द लिख दिया।

"जाति-गोत्र कुछ नहीं मिलता था। मुझे पता था मेरे माता-पिता के हाथों से यह काम नहीं होना था। उसने मेरे रंगों की डिबियाँ खोलीं और मेरा प्रश लाल रंग में डुबोकर उसने एक बिंदिया मेरे माथे पर लगा दी।"

"कितना रंगीन विवाह…"

"इस रंग ने उसने मेरे जीवन के पाँच वर्ष रँग दिए।"

"केवल पाँच वर्ष?"

"हाँ, केवल पाँच वर्ष। पर मुझे कोई शिकायत नहीं। ये पाँच वर्ष मेरी उम्र के माथे पर लाल बिंदिया की तरह लगे हुए हैं।"

"पर, भारती, केवल पाँच वर्ष ही क्यों? ऐसे सिन्दूर को तो कोई केवल माथे पर नहीं लगाता, हनुमान की तरह सारे शरीर पर लगा लेता है।"

"हनुमान हो सकना सबकी किस्मत में नहीं होता, अमृता!…एक बच्चे की आशा चमकी थी। आकाश में एक तारा चढ़ आया था। पर वह तारा टूट गया। आकाश खाली हो गया। और फिर चार वर्ष बीत गए, आकाश में कभी तारा न चढ़ा।"

"पर भारती, धरती पर दो दीये जलते थे, आपके दो दिलों के

दीये। क्या उनके होते हुए भी धरती पर प्रकाश नहीं था?"

"नहीं अमृता, वह अंधेरे आकाश की ओर देखता था और उदास हो जाता था।"

"फिर?"

"एक दिन वह मेरे पास से चला गया। शायद उस देश को ढूंढ़ने जहां की रातें तारे बांटती हैं।"

"आरती!"

"जाते समय मैंने उसके हाथ में अपना अंश दिया और लाल रंग की डिबिया दी कि वह अन्तिम बार मेरे माथे पर अपने हाथों से एक बिंदिया लगा दे।

"और जब वह चला गया, मैंने डिबिया में से सभी रंग उंडेल दिए। केवल काला रंग रख लिया। अनन्त विरह का रंग। मुझे पता लग गया था कि अब कोई और रंग मेरा साथ नहीं दे सकेगा। तुम स्वयं देख लो यह काला रंग मेरे साथ कैसी वफ़ा निभा रहा है।"

जिन हाथों ने अन्नपूर्णा की सृष्टि की थी, जिन हाथों ने नर्तकियों की सृष्टि की थी, जिन हाथों ने आरती की सृष्टि की थी, मैंने उन सबको प्रणाम किया।

मुझे लगा, मैंने कब कहा था—मुझे वह मन्दिर दिखाओ, जहाँ कला की मूर्ति हो, पर पुजारी कोई न हो···मुझे लगा किसी मन्दिर में से अन्नपूर्णा की मूर्ति भाग आई थी और यहाँ नारियल के वृक्षों में आकर आरती बन गई थी। कभी समुद्र इस मन्दिर के पाँव के पास बहता था। अब वह स्वयं चला गया था, पीछे रेत छोड़ गया था। झोंपड़ी एक मन्दिर थी, आरती एक मूर्त्ति थी और यहाँ कोई पुजारी नहीं था।

एक दीप

जब वह छोटा बच्चा था, तब माता-पिता उसे रत्तू कहकर बुलाते थे, जब उसने स्कूल में नाम लिखवाया तो उसके अध्यापक उसको रत्न कहकर बुलाने लग गए, जब वह आठवीं श्रेणी में हुआ तो उसके मित्र-दोस्त उसे रत्नसिंह कहने लगे। जब उसने स्कूल से नाम कटवा लिया, सारा गाँव उसे बालका भाई कहने लगा।

कहते हैं एक बार महाराजा रणजीतसिंह अपने दल-बल-सहित कहीं जा रहे थे कि इस गाँव में पहुँचकर उन्हें रात हो गई। खेमे लगाये गए। प्रातः हुई तो महाराज ने पूजा-पाठ इत्यादि नित्य कर्म के लिए गुरुद्वारे का पता पूछा तो मालूम हुआ कि इस गाँव में कोई गुरुद्वारा नहीं था। "तलवण्डी धुमरी, इतना बड़ा गाँव, और गाँव में गुरुद्वारा कोई नहीं ?" महाराजा ने एक भले-से सरदार को कुछ भूमि दे दी और कहा कि इस भूमि के एक भाग में गुरुद्वारे की स्थापना करो और बाकी भाग में खेती इत्यादि करके उसका खर्च चला लो।

यह बालका भाई उसी भले-से सरदार के वंश में से था। गुरुद्वारे के साथ लगती भूमि बहुत नहीं थी, इसलिए इस 'बालका भाई' के पिता ने कुछ दिन के लिए अपने स्थान पर एक अन्य व्यक्ति को बिठा दिया और आप उसने लायलपुर के इलाके में कुछ भूमि खरीद ली। इस भूमि में उसे अच्छा लाभ होने लग गया था, और उसने सोचा कि कुछ वर्ष तो वह इसी इलाके में व्यतीत कर लेगा। परन्तु उस ओर गाँव से उसे खबर मिली थी कि जिस व्यक्ति को वह अपना कार्य सौंप गया था वह उस पदवी को संभालने योग्य नहीं था।

बूढ़े, भले सरदार की आंखें भर आई थीं और उसने अपने दोनों बड़े बेटों को कहा था कि उनमें से एक गांव जाकर इस कार्य को सँभाल ले। यह धर्म की मर्यादा का प्रश्न था, यह सारे गांव की बहू-बेटियों की प्रतिष्ठा का प्रश्न था। दोनों जवान बेटों की आंखों में लायलपुर के इलाक़े का मोटा-मोटा गेहूं आ रहा था और वहां की सफ़ेद-सफ़ेद कपास खिल रही थी, इसलिए उन्होंने बिल्कुल इन्कार कर दिया। और बूढ़े-भले सरदार ने अपने सबसे छोटे बेटे को स्कूल से उठाकर 'तलवंडी घुमरां' भेज दिया था। इस प्रकार यह छोटा बालक, जिसने रत्तू से रत्न-सिंह बनने में चौदह-पंद्रह वर्ष लगाए थे, एक दिन में ही बालका भाई बन गया।

इस 'बालका भाई ने' जब प्रभात समय गुरुद्वारे को झाड़-बुहार कर अपनी कोमल मधुर आवाज से गुरु ग्रन्थ साहब का पाठ किया तो धर्म की मर्यादा अपने पाँव पर खड़ी हो गई। गांव की बहू-बेटियों की श्रद्धा फिर गुरुद्वारे की ओर लौट आई।

गाँव की महिलाएँ बालका भाई के सिर पर प्यार देतीं और साथ ही उसकी चरण-धूल ले लेतीं। कोई प्रातः दूध का कटोरा भरकर ले आती, कोई दोपहर को लस्सी का गिलास भर लाती।

जो भी औरत अपने घर में नया मटका लगाती, उसमें से पहला कटोरा 'बालका भाई' को पिलाती और उसे यह विश्वास हो जाता कि अब सारी गरमियों में उसके मटके का पानी ठंडा रहेगा।

जो औरत शरद काल में मसूर की दाल का पिन्नियाँ बनाती सबसे पहली पिन्नी वह बालका भाई को खिलाती, और उसे विश्वास होता कि अब सारा वर्ष उसका घर परिपूर्ण रहेगा।

जिसके घर विवाह-शादी के लिए भट्ठी चढ़ाई जाती, वह सबसे पूर्व मिठाई की थाली भरकर बालका भाई के आगे जा रखता, और उसका विश्वास होता कि उसका कार्य सम्पूर्ण होगा।

यदि किसी औरत के बच्चों को बुखार चढ़ता तो वह घबराई-घबराई-सी बालका भाई की मिन्नतें करती कि वह सुच्चे मुंह प्रभात के समय

'महाराज' का वाक ले और उसे बताए कि वाक अच्छा आया है कि नहीं बालका भाई जब अपनी मीठी-सी ज़बान में यह कहता कि माताजी, महाराज का वाक हमेशा अच्छा ही होता है, महाराज का वाक कभी बुरा नहं होता। उस औरत का धीरज आ जाता और उसका बेटा राज़ी हो जाता।

फसलों के समय जब पहले-पहल लोगों के घर अनाज आता तो वे सबसे पहले तसला भरकर बालका भाई के आगे जा रखते और फिर वर्षा समय पर हो जाती, खेतों में समय पर बीज डाल दिया जाता।

बालका भाई का मुंह इतना नेक, आँख इतनी शरमीली और आवाज़ इतनी सुरीली थी कि लोगों का मन करता कि वह एक भोग समाप्त करे और एक नया रखवा दे। औरत उँगलियों पर दिन गिनती रहती कि अगली अमावस्या कब आएगा अगली संक्रान्ति कब आएगी, आगामी गुरुपर्व कब आएगा, जबकि वे बालका भाई को अपने चौके में बिठाकर उसके लिए थाली परोसेंगी।

एक बार किसी का बाप मर गया। उसकी एक ही चाह थी कि वह बाप के निमित्त एक पाठ रखवाए और बालका भाई उसके घर आकर भोग डाले। बालका भाई का छोटा-सा मन घिरने लग गया और उसने एक ही हठ पकड़ ली कि यह पाठ नहीं रखना, इस पाठ का भोग नहीं डालना। श्रद्धालु की आँखें भर आईं और उसने बालका भाई के पैर छू लिये। बालका भाई जब अपनी कोठरी में आया, वह रोने लग गया। उन दिनों एक रमता साधु गुरुद्वारे में ठहरा हुआ था, उसने बालका भाई का मुँह-सिर चूमा और बालका भाई ने अपना दिल खोल दिया कि कई लोग मरकर भूत-प्रेत बन जाते है, यदि वह मरने वाले व्यक्ति के घर पाठ करने गया तो पता नहीं उसे कोई भूत-प्रेत ही न चिमट जाए। रमते साधु ने बालका भाई को बहुत प्यार किया और समझाया कि जिस स्थान पर गुरुग्रंथ साहब का प्रकाश होता है, जहाँ महाराज का पाठ होता है, उस स्थान पर भूत-प्रेत अथवा चुड़ैल को आने का साहस नहीं हो सकता। 'सच्च' बालका भाई आँसू पोंछकर

खड़ा हो गया और उसने उस घर का पाठ करना मान लिया। इस प्रकार बालका भाई के मन की कोमल-सी धरती में धर्म की जड़ें बड़ी गहरी होती गईं।

प्रतिदिन प्रभात समय बालका भाई जपुजी साहिब पढ़ता, हर रोज शाम को वह रहिरास का पाठ करता और रोज दोपहर को बालका भाई कोई-न-कोई प्रसंग पढ़ता। श्रोतागण मस्त हो जाते।

जपुजी तो आदिकाल की वस्तु थी, कभी बदल नहीं सकती थी। रहिरास भी अनादि चीज थी, परन्तु प्रसंग एक ऐसी वस्तु थी, जिसे हर रोज नया होना होता था। इसलिए यदि इस प्रसंग में सूरज का प्रकाश समाप्त होता तो भक्तवाणी आरम्भ हो जाती। भक्तवाणी समाप्त होती तो राणा सूरतसिंह आरम्भ हो जाता। और कई बार बेंत पढ़े जाते, कवित्त पढ़े जाते, दोहे गाए जाते और कई बार ऐसा भी होता कि वारिस-शाह की हीर भी गाई जाती। बालका भाई का कोमल हृदय अंग-अंग कटवाने वाले भाई मनीसिंह की शहीदी पढ़ते हुए जिस तरह रो पड़ता, उसी तरह डोली चढ़ती हीर की चीखें सुनकर भी भर आता। और उसके मन में इस विचार की नींव और गहरी हो जाती कि मनुष्य का धर्म केशों और श्वासों के साथ निभना चाहिए।

संक्रान्ति का दिन था। आज बालका भाई प्रातः हर रोज़ से बहुत पहले उठ पड़ा। अभी एक पहर रात बाकी थी। उसने कुएँ में से जल की गागर निकाली और स्नान किया। चूल्हे में लकड़ियाँ जलाकर प्रसाद तैयार करके एक परात में डाला। रोज़ वह जनता में बताशों का प्रसाद बाँटा करता, परन्तु संक्रान्ति अथवा अमावस के दिन बाँटने के लिए वह हलवे का प्रसाद तैयार किया करता था, और आज संक्रान्ति थी।

पाठ हुआ, कीर्तन हुआ, अरदास हुई और वह जनता में प्रसाद बाँटने लगा। एक लड़की को प्रसाद दे दिया, थोड़ा-सा प्रसाद उसके हाथ से नीचे गिरकर उसके पैर पर जा गिरा। लड़की ने जल्दी से बालका भाई के पाँव पर गिरा हुआ प्रसाद उठाकर अपने मुँह में डाल लिया। यह कोई असाधारण बात नहीं थी, क्योंकि उसको पता था कि

प्रसाद यदि नीचे भूमि पर गिर जाए तो भी उसे उठाकर खा लेना चाहिए, नहीं तो प्रसाद की बेअदबी हो जाती है। इस पर भी जब इस लड़की ने प्रसाद उठाने के लिए उसके पाँवों को हाथ लगाया तो उसके पाँव में एक कँपकँपी हुई और ऊपर चढ़ती-चढ़ती उसके दिल तक पहुँच गई।

यह संक्रान्ति का दिन था, जब सारा दिन बालका भाई के शरीर में एक झुनझुनी-सी लगी रही। यह संक्रान्ति की रात थी जबकि बालका भाई की नींद उखड़ गई थी।

"यह मुझे क्या हो गया है?" बालका भाई ने रात के गहरे अँधेरे में अपने मन से पूछा।

"कोई अलौकिक-सी बात," उसके मन ने उत्तर दिया।

"क्या मेरे अन्दर कोई भूत-प्रेत घुस आया है या कोई चुड़ैल?" उसने डरकर पूछा।

"जहाँ महाराज का पाठ होता हो वहाँ कोई भूत-प्रेत नहीं आ सकता, न कोई चुड़ैल।" उसके मन ने बड़े धीरज से उत्तर दिया।

"फिर यह कौन है?" उसने घबराकर प्रश्न किया।

"शायद कोई परी, कोई अप्सरा।" उसके मन ने कुछ शरमाकर कहा।

और रात के गहरे अँधेरे में उसके मन ने एक दीप जला दिया।

उस रात बालका भाई को प्रथम बार ऐसा महसूस हुआ कि उसके बाल-अंगों पर जब बुजुर्गी का चोला डाल दिया गया था, वह घबराया नहीं था। चाहे वह चोला बड़ा था परन्तु उसके बाल-अंगों ने उसे अच्छी तरह पकड़-सँभाल लिया था—परन्तु अब उसकी अल्हड़ जवानी के अंगों से इस चोले के किनारे नहीं सँभाले जा रहे थे। बालका भाई को बुजुर्गी के इस चोले पर भी बहुत गुस्सा आया और अल्हड़ जवानी पर भी बहुत रंज हुआ।

कुछ दिन ही व्यतीत हुए थे जब बालका भाई का वीरो के साथ अचानक मेल हो गया—वही वीरो, जिसने बालका भाई के पाँव पर से

प्रसाद उठाकर अपने मुँह में डाल लिया था। वीरो एक भड़भूजिन की भट्ठी के पास खड़ी हो मक्की के दाने भुनवाकर अपनी झोली में डलवा रही थी कि वालका भाई उसके पास से गुजरा और उसने झोली से भुने हुए दानों की मुट्ठी भर उसके आगे कर दी। वालका भाई ने बहुत सोचा कि वह ये दाने न ले, लेकिन स्वाभाविक ही उसके दोनों हाथ आगे हो गए और उसने वीरो से इतनी श्रद्धा के साथ फुल्ले ले लिए जितनी श्रद्धा से कि कोई दोनों हाथों में प्रसाद लेता है।···उस दिन वालका भाई को पहली बार यह पता लगा कि भुनी हुई मक्की से इस प्रकार सुगन्ध उठ सकती है, जिसके साथ किसी का अंग-अंग झूम उठे।

एक दिन वालका भाई श्री गुरुग्रंथ साहव की हजूरी में बैठा दत्त-चित्त होकर पाठ कर रहा था कि उसे ऐसा लगा कि उसकी पीठ-पीछे कोई चँवर कर रहा है। वह जब पाठ करके उठा तो उसने देखा कि वीरो उसकी पीठ-पीछे खड़ी चँवर कर रही थी···और उस रात से इस तरह हो गया कि वालका भाई जब सोता उसकी नींद वीरो के किसी-न-किसी स्वप्न के सिर पर चँवर करती रहती।

वालका भाई को महसूस होने लग गया कि संक्रांति वाली रात उसके मन ने जो दीप जलाया था, उस दीप की लौ ऊँची हो गई थी।

गुरुद्वारे के पीछे वीरो की एक सहेली का घर था। कई बार रात को गाँव की लड़कियाँ वहाँ मिलकर चरखा काततीं। जब लड़कियाँ गीत गातीं तो न चरखे का तार टूटता और न गीत का स्वर। यह गीत सुनते-सुनते वालका भाई ध्यान-मग्न हो जाता, उसी तरह जिस तरह कभी दयालजी की आनन्द-मंडली गुरुद्वारे आकर शब्द-कीर्त्तन किया करती थी और वालका भाई ध्यान-मग्न हो जाता था।

वह वीरो की आवाज पहचानता था। जिस तरह वीरो चरखे का तार लम्बा निकालती थी, उसी तरह वह गीत का स्वर भी ऊँचा उठाती थी। एक दिन वह ध्यान-मग्न हो वीरो का गीत सुन रहा था कि अचानक उसे महसूस हुआ जैसे सभी लड़कियों की आवाज़ उस गीत

में मिला हुई थी, पर उसमें से वीरो की आवाज़ निकल गई थी। पता नहीं कहां उठकर चली गई थी! और बालका माई का दिल टूटने-बिखरने लगा।

फिर उसकी कोठरी की खिड़की को किसी ने खटखटाया। एक बार, दो बार, और बालका माई ने जब खिड़की से बाहर देखा, तो बाहर वीरो खड़ी थी। उसने जब अपने दरवाज़े का कुंडा खोला उसे महसूस हुआ कि आज कोठरी में वीरो नहीं आई थी, लड़कियों की महफिल का एक गीत उठकर आ गया था। उसकी अल्हड़ जवानी के दिल में आया कि वह अपने गले में पड़े बुजुर्गी के चोले को फाड़कर उतार दें। उसकी सांसें रुक गईं। उसे विचार आया—नहीं, आज उसकी कोठरी में वीरो नहीं आई थी, परीक्षा का समय आ गया था। और अल्हड़ जवानी ने अपने गले में पड़े हुए बुजुर्गी के चोले के सभी किनारे ज़ोर से पकड़ लिए।

"इस समय वीरो! तुझे डर नहीं लगा?"

"डर किससे?"

"इस अंधेरे से।"

"मैं कोई दूर से आई हूँ, साथ ही पीछे से तो आई हूँ।"

"मेरे से?"

वीरो ने एक बार नज़र भरकर बालका माई के मुंह की ओर देखा और फिर एक उच्छ्‌वास लेकर चुप हो गई।

"तुझे डर नहीं लगता, पर मुझे डर लगता है।"

"किससे?"

"शायद अपने-आपसे।"

इस बार वीरो हंस पड़ी और कहने लगी, "यह ले पकड़ मरूंडे! मैं आज सारा दिन दाने भुनाती रही और बीच में गुड़ डालती रही, कुछ मरूंडे मैं अपनी सहेलियों को दे आई हूँ और कुछ तुम्हारे लिए लाई हूँ। लो मैं जाती हूँ। तुम यह मरूंडे खाते रहो और डरते रहो।" और वीरो उन्हीं पाँवों लौट गई।

बालका भाई को महसूस हुआ कि शायद मरूड़े तो मीठे होंगे ही, परन्तु वीरो आज कड़वी थी, बहुत कड़वी।

चारपाई के पैताने पर बैठे उसकी रात व्यतीत हो गई। कई बार उसने लोटे में से पानी लेकर कुल्ला किया, पर उसे सारी रात यह महसूस होता रहा जैसे उसके गले में कोई कड़वा आक घोल रहा हो।

और उसे महसूस हुआ, उसके मन ने जो एक दीप जलाया था, आज मर्यादा के उल्लंघन से उस दीप की लौ कांपने लग गई थी।

काफ़ी दिन व्यतीत हो गए, परन्तु वीरो गुरुद्वारे नहीं आई। संक्रांति आई, अमावस आई, परन्तु वीरो नहीं आई और बालका भाई सोचता, वीरो एक बार आ जाए, बस एक बार''उस दिन वह अपने दोनों हाथों में वीरो के दोनों हाथ पकड़कर प्रभु के आगे प्रार्थना करेगा, चार हाथों से प्रार्थना करेगा कि हे सच्चे पातशाह ! तू स्वयं सब-कुछ जानता है, तू हरेक के दिल की जानता है। हम पाँच तत्त्वों के पुतले जीव, हमारी भूलें क्षमा कर दो। कोई रास्ता निकाल दो। हमारा मेल करा दो।

जब कभी बालका भाई को उसके बूढ़े भले बाप की चिट्ठी आती, उसमें राजी-खुशी पूछने के बाद हर बार यह नसीहत लिखी हुई होती थी कि अल्पाहार लेना, स्वयं थोड़ा सोना और मर्यादा के उज्ज्वल माथे पर कभी कालिख न लगने देना।

बालका भाई को अपने बाप में बहुत ही श्रद्धा थी। उसके कहने को वह बहुत महत्त्व देता था। पर जैसे वह वीरो के प्यार को टटोलता उसका रंग उसे शुद्ध लाल दिखाई देता, कालिख कहीं ढूंढ़े भी न मिलती।

बालका भाई को महसूस हुआ कि एक संक्रान्ति की रात को उसके मन ने जो दीप जलाया था उसकी लौ अब पूरे यौवन पर थी और फिर एक दिन वीरो आ गई।

यही रात का समय था। उसी तरह उसने खिड़की को खटखटाया, उसी तरह बालका भाई ने दरवाज़ा खोला, परन्तु आज वीरो के हाथ में कोई मरूड़ा नहीं था, आज तो वह स्वयं ही मरूड़ा हुई पड़ी थी।

यारास्का भाई ने अपनी सारी प्रतीक्षा वीरो के पैरों के आगे बिछा दी और उसकी बाँह को अपनी बाँह का सहारा देते हुए कहने लगा, "वीरो, आज हम प्रभु के आगे प्रार्थना करेंगे कि···"

वीरो ने बात काट दी, "मैं भी आज इसीलिए आई हूँ, बस फिर नहीं आऊँगी। आज मैं प्रभु के आगे प्रार्थना करूँगी तू भी मेरे लिए प्रार्थना करना।" और वीरो ने अपने मुँह पर बह रहे आँसुओं की धार को पोंछते हुए कहा, "प्रभु क्षमा करने वाला है, वह मुझे क्षमा कर देगा, वह मेरी माँग अवश्य पूरी करेगा।"

"तूने क्या माँगना है वीरो?"

"यह भी कोई पूछने वाली बात है? मैंने और क्या माँगना है, यही कि मैं तुम्हें भूल जाऊँ!"

"क्या कह रही हो वीरो!"

"अब मैंने वहाँ जाना है जहाँ मेरे माँ-बाप ने मेरा संयोग मेल दिया है। इसलिए आज मैं प्रभु से यह माँगने आई हूँ कि सच्चा प्रभु तुम्हें मेरे दिल से निकाल दे।"

"वीरो, एक बात कहूँ?"

"कहो।"

"उसके स्थान पर यह प्रार्थना नहीं हो सकती कि प्रभु सच्चा हम दोनों को मेल दे?"

"नहीं, यह प्रार्थना नहीं हो सकती, पर हो भी सकती है यदि तुम कहो तो··"

"यदि हो सकती है तो चल यही प्रार्थना करें।"

"चल···पर पहले एक बात सुन ले मेरी, मैं जाटों की बेटी हूँ, मेरे माँ-बाप ने सीधे हाथों से मुझे तुम्हारे साथ नहीं भेजना। उन्होंने कहीं जाटों के घर ही मेरा सम्बन्ध जोड़ना है।"

"फिर?"

"या तो मिर्ज़े की तरह आज रात मुझे निकालकर ले चल। पर अच्छे-बुरे की मैं ज़िम्मेवार नहीं। और यदि तुम्हें मौत से डर लगता

है…।"

"मौत से मैं नहीं डरता वीरो ! पर…"

"फिर पर क्या ?"

"हमारी मर्यादा के माथे पर कालिख लग जाएगी। मैं इस पदवी पर होकर, गाँव की एक बेटी…"

"मैंने इसीलिए तो कहा था कि यह प्रार्थना नहीं हो सकती। चल उठ, महाराज वाला कमरा खोल।"

बालका भाई ने गुरु महाराज वाला कमरा खोला, अपने काँपते हुए हाथ जोड़े और वीरो गुरु महाराज की हजूरी में खड़े होकर अरदास करने लगी।

और जब वीरो ने आँखें खोलीं, अपनी दोनों हथेलियाँ खोलकर उसने बालका भाई की ओर इस तरह देखा, जैसे वह प्रसाद माँग रही है। और बालका भाई ने अपने दिल का सारा चैन वीरो की अंजली में डाल दिया।

वीरो ने बाहर निकलकर गुरुद्वारे का दरवाज़ा बन्द कर दिया और बालका भाई अन्दर अँधेरे में मन के उस दीप के पास खड़ा रहा, जिसको मर्यादा की फूँक ने सदा के लिए बुझा दिया था।

कपिला

कपिला ने अपने कमरे का दरवाज़ा बन्द किया और कपड़े बदलने लगी। "आज मैं कौनसी कमीज़ पहनूं? लाल धारियों वाली? पीले फूलों वाली? या बिलकुल हरे सिल्क की?" और फिर कपिला ने गले से पहली कमीज़ उतारकर नयी कमीज़ों को बारी-बारी अपने गले के साथ लगाकर आईने में देखा।

हर बार आईने में कपिला का रूप बदल जाता था, और उसे अपना हर रूप सुन्दर दिखाई दिया। उससे यह फैसला न हो सका कि वह कौनसी कमीज़ पहने, और उसने हैरान-सी होकर सभी कमीज़ें पास पड़ी एक मेज़ पर रख दीं। अब आईने में कपिला के गले में कोई कमीज़ नहीं थी। यह एक नया रूप था, जिसकी ओर पहले कभी कपिला का ध्यान नहीं गया था। इस रूप ने उसके दिल में एक कँपकँपी-सी पैदा कर दी।

और फिर कपिला ने अपने हाथों से अपने शरीर को छुआ, उसी प्रकार, जिस प्रकार वह अपनी सिल्क की, साटन की अथवा वेलवेट की कमीज़ को छुआ करती थी। उसके शरीर में अजीब नरमाई थी। सिल्क, साटन और वेलवेट बड़ी नरम होती थी, पर बिलकुल ठण्डी। अपने शरीर को हाथ लगाकर उसे अजीब-सी हरारत महसूस हुई। इस नरमाई और इस हरारत के साथ उसे एक झुनझुनाहट-सी हुई।

माँ जब भी कपिला के बिस्तर की चादर बदलती थी, कपिला कई बार उस नयी चादर पर उल्टी लेटकर उसको सूँघा करती थी। नये धुले कपड़ों में से उसे हमेशा एक अजीब-सी सुगन्ध आती थी, एक

ताजगी-सी सुगन्ध। आज पता नहीं क्यों कपिला ने अपने दाहिने बाजू को ऊँचा उठाकर अपने मांस को सूंघा तो उसकी आँखें नशिया गईं।

कपिला ने फिर आईने की ओर देखा। एक रूप आईने में जड़ा हुआ था, और कपिला ने आगे बढ़कर अपने दोनों होंठों से आईने में दिख रहे होंठों को छुआ, जाने वह उस रूप का घूंट भरना चाहती थी।

कमरे का दरवाजा खटका। माँ कपिला को कह रही थी कि वह बाहर आकर चाय पी ले। कपिला को ऐसे लगा, माँ तो पूरी घड़ी की सुई है। दो मिनट भी कभी माँ को देर नहीं होती। और कपिला ने जल्दी से अपनी उतारी हुई कमीज को ही पहन लिया और चाय पीने के लिए अपने कमरे से बाहर आ गई।

कपिला की बड़ी बहन भी कपिला के साथ चाय पी रही थी। माँ ने आज खोये और अण्डों की एक नयी चीज बनाई थी। कपिला की बहन पता नहीं आज क्यों इतनी खोयी हुई थी, माँ ने दो बार उसे याद कराया, पर वह चाय के छोटे-छोटे घूंट भरती आज खाना भूल गई थी। तीसरी बार जब माँ ने प्लेट उसके आगे की, उसने खोई-खोई आँखों से माँ के मुंह की ओर देखा। माँ ने प्लेट दूर हटा दी जैसे उसके नये पकवान का इस मेज ने निरादर कर दिया था।

"तू ने फैसला कर लिया है ?" कपिला ने आहिस्ता से अपनी बहन से पूछा।

"फैसला ही तो हो नहीं रहा।"

"तू आप ही तो कहती थी कि वह नरेश तुझे बहुत अच्छा लगता है—कितना ऊँचा, लम्बा और सुन्दर !"

"पर वह कमाता कुछ नहीं।"

"और वह झूमी-झूमी आँखों वाला शायर···?"

"मैं जब अखबार में उसकी तारीफ पढ़ती हूँ तो मेरा दिल उसकी ओर उड़ता है, पर न तो उसके पास अच्छा घर है न नौकरी।"

"और वह कर्नल ?"

[illegible] ने वर्दी पहन रखी होती है, वह बड़ा सुन्दर लगता है,

मेरियो ! यह ग्रांस मेरी अमानत।
चूम लेना परन्तु यह अपनी ग्रांस
हाथ की पाँचों उँगलियाँ

। तू वाले जिसके साथ मन चाहे
को न कहना।" और मारियो ने
उँगलियों में दबा ली।
के सामने से भूने हुए मांस
हटा दिया।

होने वाली है मेरियो।"
ने आगे कहा, "सफलता को प्राप्त
करना पड़ता है, मेरियो।" बैटी
छिपे नल से आकर अपने हाथों

बैटी के हाथों से पकड़े गिलास में
और नम्रता से उसके मुँह में
और फिर मेरियो ने सोचकर

के चेहरे पर इस प्रकार की तीव्र
मेरियो के चेहरे पर प्यार से दूध
पाला करती थी, जब किसी
दूध पाने के लिए उसकी गोद में

एक दिन के ओवर बीच में बैठ
कौशिक ने उसकी रिहाई सुनकर

वैटी-मेरियो

"यदि एक दिन मुझे ईश्वर मिल जाए और मुझसे पूछे, मेरियो ! तुम कौनसी दो बातों के लिए मेरा धन्यवाद करोगे ? तो मालूम है कि मैं क्या कहूँगा ?" मेरियो ने अपनी कमीज़ के खुले हुए बटन बन्द किए और वैटी के सिरहाने की ओर झुका।

"यदि वह यही बात मुझसे पूछे, तो मालूम है मैं क्या कहूँ ?" और हँसती-खेलती वैटी ने मेरियो की कमीज़ का एक बटन फिर खोल दिया।

"अच्छा, पहले मैं बताऊँगा, तू फिर बताना।"

"अच्छा।"

"मैं दो बातों के लिए उसका धन्यवाद करूँगा। कहूँगा—एक तो तुमने मेरे गले में इस तरह की आवाज़ भर दी, मैं कभी भी तेरा अहसान नहीं भूल सकता। दूसरे यह कि तुमने मेरे दिल में इस तरह की सुन्दर वैटी भर दी, मैं तेरा अहसान नहीं उतार सकता।"

"मैं भी दो बातों के लिए उसका धन्यवाद करूँगी। कहूँगी—एक तो तुमने मुझे इतना रूप दिया, और दूसरे उसे देखने के लिए मेरियो की आँखें दे दीं।"

मेरियो और वैटी की हँसी छलक पड़ी। हँसी हँसी में मिल गई, होंठ होंठ से मिल गए। मेरियो और वैटी दोनों फ़िल्मों के अदाकार थे। मेरियो की आवाज़ और वैटी का रूप सफलता के शिखर पर थे। कुछ ही दिन हुए दोनों का विवाह हुआ था।

"तेरी साँस मुझे पागल बना देगी, मेरियो ! यह साँस मेरी अमानत। तुम किसी और लड़की के होंठ चाहे चूम लेना परन्तु यह अपनी साँस किसी को न देना।" और बैंटी ने अपने बाएँ हाथ की पाँचों उँगलियाँ मेरियो के बालों में डुबा दीं।

"यह तुम्हारे बोल मेरी अमानत। तू चाहे जिसके साथ मन भाए कर लेना, परन्तु यह बात किसी और को न कहना।" और मेरियो ने बैंटी की पाँचों उँगलियाँ अपनी पाँचों उँगलियों में दबा लीं।

एक रात अचानक ही बैंटी ने मेरियो के सामने से भुने हुए मांस की प्लेट और शराब का गिलास दूर हटा दिया।

"बैंटी!"

"प्लीज़ मेरियो! और नहीं।"

"यह क्या पागलपन है?"

"अगले सप्ताह तुम्हारी नयी फिल्म आरम्भ होने वाली है मेरियो!" बैंटी का मुँह पिघल गया और उसने आगे कहा, "सफलता को प्राप्त करने के लिए बड़ा कड़ा जीवन व्यतीत करना पड़ता है, मेरियो!" बैंटी ने प्लेट और गिलास को मेज़ के दूसरे सिरे तक ले जाकर अपने हाथों से दबाए रखा।

मेरियो ने कुछ नहीं कहा, परन्तु बैंटी के हाथों में पकड़े गिलास से अपनी आँखों से शराब का एक घूँट भरा, और कल्पना ने उसके मुँह में भुने हुए मांस का ज़ायका घोल दिया। और फिर मेरियो ने खीझकर बैंटी के मुँह की ओर देखा।

आज बड़े दिनों के बाद मेरियो के चेहरे पर इस प्रकार की खीज दिखाई दी थी। इस प्रकार की खीज मेरियो के चेहरे पर आज से कुछ वर्ष पूर्व आया करती थी। अक्सर आया करती थी, जब किसी होटल में जाकर अपना मनपसन्द कुछ खाने के लिए उसकी जेब में पैसे नहीं होते थे।

वह हर रोज़ घण्टा-घण्टा अपने एक मित्र के मोटर गैरेज में बैठ कर गिटार बजाया करता था। एक मोटर-मालिक ने उसकी गिटार सुनकर

उसे तीन बार तमगे दिये थे। वह तीनों तमगों को सामने रखकर कई बार सोचा करता था—काश, ये तीन प्लेटें बन जाएँ, भुने हुए माँस से भरी हुई दावती प्लेटें !

फिर हालीवुड का किराया जोड़नेमें उसे कितने वर्ष लग गए ! समुद्र के किनारे बैठकर वह सायंकाल कितनी-कितनी देर तक गिटार बजाता रहता और गाता रहता ! लोगों की भीड़ उसके आस-पास एकत्रित हो जाती थी। और फिर यह भीड़ आहिस्ता-आहिस्ता बिखर जाती। वह हर रोज यह कल्पना करता···कि इन जाने वाले यात्री लोगों में से एक व्यक्ति वहीं खड़ा हो गया था। वह उसकी कला का असली पारखी था। और उससे कह रहा था, "कभी किसी के हाथों ने इस साज को ऐसे नहीं बजाया। और तेरी आवाज जैसी मैंने कभी किसी की आवाज़ नहीं सुनी। तुम कल प्रातः दस बजे आना। यह लो मेरा कार्ड···"

परन्तु मेरियो के आस-पास भीड़ लगाने वाले लोग प्रतिदिन बिखर जाते। कभी कोई व्यक्ति उसके पास खड़ा नहीं हुआ। अन्ततोगत्वा वह और उसकी गिटार अपने पारखी की लम्बी प्रतीक्षा से थक गए।

"अच्छा मित्र मेरियो, दो सप्ताह और बस अन्तिम दो सप्ताह। और फिर तू सभी आशाओं को इस किनारे की रेत में दबाकर चले जाना।" एक दिन मेरियो ने अपने-आपके साथ इकरार किया।

उन दो सप्ताहों के बारहवें दिन ने मेरियो के किये हुए इकरार की लाज रख ली। मेरियो की आवाज़ के लिए हालीवुड का दरवाज़ा खुल गया। और फिर बस, एक बार दरवाजा खुलने की देर थी, मेरियो की आवाज़ दूर-दूर तक गूंज उठी। लोगों से उसे शोहरत मिली, बैटी से उसे मुहब्बत मिली। मेरियो की आवाज़ ने बैटी के रूप को जी भर-कर पिया।

प्लेटों में भरा हुआ माँस और गिलासों में भरी हुई शराब मेरियो इस प्रकार खाता-पीता जैसे गत कई वर्षों का उलाहना उतार रहा हो। और आज बैटी ने उसके आगे से प्लेट उठा ली थी, गिलास भी

उठा लिया था। मेरियो को अपना इतालवी गुस्सा जाने कितना महमूस हुआ। उसे अपनी आवाज़ और बेटी का रूप सब-कुछ भूल गया। उसने अपनी बाँह से बेटी का हाथ झटक दिया और कमरे से बाहर चला गया।

अकेली खड़ी बेटी की आवारिस आँखों में आँसू भर आए। फिर उसे महसूस हुआ भविष्य का हरेक क्षण उस गाड़ी की तरह आता है जिसने वर्तमान की पटरी से गुज़रना होता है। यदि वह वर्तमान की पटरी को ठीक रखे, उस पटरी का हर जोड़ ध्यान से देखे, कसे और उसका परीक्षण करे, तो उसके भविष्य की गाड़ी कभी उलट नहीं सकती'''और बेटी ने अपनी आँखें पोंछ लीं।

आगामी सप्ताह, उससे आगामी, और उससे आगामी। बेटी ने मेरियो को शराब पीने से मना नहीं किया, परन्तु मेरियो को पता नहीं क्या हो गया था! वह शराब का गिलास भरता, सामने रखता, दो घूँट पीता, तो उसके सारे शरीर में एक खारिश-सी होने लगती। वह दो घूँट और पीता, उसके मुँह पर लाल-लाल निशान उभर आते। और सामने पड़ी शराब को हाथ से दूर हटाकर मेरियो मेज़ पर से उठ बैठता।

एक सप्ताह और व्यतीत हो गया। मेरियो अपने हाथों में शराब का गिलास पकड़ता, पी न सकता। गिलास की ओर देखता रहता और फिर उसकी आँखों में आँसू भर आते।

एक दिन मेरियो के हाथों में गिलास था, आँखों में आँसू थे और वह दिल की सारी पीड़ा को एक गीत में गाने लगा। आवाज़ मेरियो के अधरों पर काँपी, फिर कमरे की दीवारों से टकराई, और फिर साथ के कमरे में बैठी हुई बेटी के कानों में बिलखने लगी।

सिसकियाँ भरकर रोती हुई बेटी ने मेरियो के गले में अपनी बाँहें डाल दीं—

"मुझे क्षमा कर दो, मेरियो, मुझे क्षमा कर दो। मुझसे तेरा यह दुःख देखा नहीं जाता। मैं आगे से ऐसा नहीं करूँगी। मैं तुम्हारे खाने में शराब छुड़ाने की गोलियाँ डालती रही हूँ। मुझे डॉक्टर ने कहा था। पर अब मैं ऐसा नहीं करूँगी।" और बेटी की साँस उसी की सिसकियों

आंखों में आप ही शर्मिन्दा हो गया हूँ।"

अगले खामोश और उदास दिनों में मेरियो को डॉक्टर ने सलाह दी कि उसे कुछ दिन अकेला समुद्र के किनारे रहना चाहिए। वैटी ने सुना तो यह महसूस किया कि मेरियो को उसका साथ अच्छा नहीं लग रहा था। वह अकेला रहना चाहता था, वैटी से दूर रहना चाहता था।

दिल की पीड़ा का दर्द होंठों से निकल पड़ा। कहने लगी, "मैं तुम्हारे रास्ते की रुकावट हूं, मैं तुम्हारे रास्ते से निकल जाऊंगी। तुम अपना घर छोड़कर क्यों जाते हो? मैं चली जाऊंगी।"

"यह घर तेरा है वैटी! तू ने उसे बनाया है।"

"नहीं यह तेरा घर है मेरियो! तुम इसे नहीं छोड़ सकते।"

"मैं केवल पन्द्रह दिन···"

"इसलिए कि मेरी सूरत दिखाई न दे?"

मेरियो को पता नहीं चला कि वह क्या उत्तर दे। वैटी ने महसूस किया, बात यही थी। मेरियो के मन में जरूर यही बात थी। दुःख से निचुड़ी हुई वैटी ने कहा, "तुम मेरी सूरत नहीं देखना चाहते। मैं भी तुम्हारी सूरत नहीं देखना चाहती।" और वैटी रोती-रोती पलंग पर गिर पड़ी।

"तू मेरी सूरत नहीं देखना चाहती, अच्छा मैं तुझे अपनी सूरत कभी नहीं दिखाऊँगा," और गुस्से में भरा हुआ मेरियो घर से बाहर चला गया।

दो दिन और दो रातें वैटी जैसे नीम बेहोश-सी पड़ी रही। तीसरे दिन वह मेरियो की तस्वीर के आगे खड़ी हो बावलों की तरह बोलती गई—"तुमने कहा था कि तुम मुझे अपनी सूरत नहीं दिखाओगे। मैं आँखें बन्द करती हूँ तो भी तेरी सूरत दिखाई देती है। आँखें खोलती हूँ तो भी तेरी सूरत दिखाई देती है। तेरी सूरत···हर तरफ़ तेरी सूरत···और वैटी ने बावली-सी हो अपने चारों ओर देखा। सामने वाली खिड़की···खिड़की का शीशा और शीशे के भीतर भी उसी की सूरत!

"मेरियो, मेरियो !" बैटी ने आवाजें दीं और यह महसूस किया कि शायद वह पागल होती जा रही थी।

. सिटकी सुनी तो मेरियो ने खिड़की में से भीतर को छलांग लगा दी।

"तुम कहाँ चले गए थे ?" बैटी अपने मेरियो के गले में लिपट गई।

"मैं कहीं नहीं गया बैटी ! मैं कहीं नहीं जा सकता।" मेरियो का सारा दिल पिघलकर बैटी के दिल में बह गया। कुदरत को पता नहीं बैटी और मेरियो के इस मेल पर क्या ईर्ष्या आ गई। मेरियो बीमार हो गया दिल की तकलीफ में और थोड़े ही दिनों के बाद उसे अस्पताल जाना पड़ा।

"तुम्हें घर पर क्यों नहीं रहने देते ये डॉक्टर ? ये सभी तुम्हें मुझसे दूर करना चाहते हैं।" बैटी का इश्क जुनून की सीमाओं को छूने लगा था। "और या तुम ही मुझसे दूर रहना चाहते हो?" बैटी रोने लग गई।

बैटी रोई, मेरियो बैटी के इस पागल प्यार पर मुस्कराया। परन्तु डॉक्टरों ने उसे घर में रहने की इजाजत नहीं दी।

"मेरी हालत ठीक नहीं बैटी, तू मेरे पास आ जा।" अस्पताल में से मेरियो ने सन्देश भेजा।

"केवल बहाना, बिलकुल बहाना। एक तो जान-बूझकर मेरे पास से दूर चला गया और अब मुझे बुलाता है।" मुहब्बत के बल पर बैटी का क्रोध बहुत बढ़ा था। वह छः घण्टे तक खामोश बैठी रही और अस्पताल न गयी।

फिर उसके भीतर कुछ हलचल हुई और वह भागकर अस्पताल गयी। उस समय'''ईश्वर की दी हुई वे दोनों दातें खतम हो चुकी थी—वही जिसके लिए मेरियो धन्यवाद किया करता था। एक मेरियो की जादू-भरी आवाज़ जो अब उसके गले में ही सूख गई थी और दूसरी मेरियो की दिल की धड़कन, जिसमें बैटी बसती थी, अब गतिहीन हो गई थी।

"वर्तमान की पटरी हिल गई। मेरे भविष्य की सारी गाड़ी उलट

गई।" बैंटी के कुछ आंसू उसके मुंह पर बह गए, और बाकी सारे उसकी आंखों में जम गए।

उस रात बैंटी ने शराब निकाली, जो वह मेरियो को पीने नहीं देती थी। उसने वे सारी गोलियां भी निकालीं, जिन्हें वह मेरियो को उसके खाने में डालकर निगला दिया करती थी। साथ ही बैंटी ने घर के सभी दरवाज़े बन्द कर लिये। एक-एक करके उसने सभी गोलियां खा लीं, घूंट-घूंट करके वह सारी शराब पी गई। सवेरा हुआ, सभी ने देखा, बैंटी वहीं चली गई थी, जहां उसका मेरियो जा चुका था।

बाएँ कन्धे की रोज बढ़ती जा रही पीड़ा से हारकर अन्त में मैं उस डॉक्टर के पास गयी, जिसे सबसे बड़ा 'न्यूरालोजिस्ट' कहा जाता है। "इस रोग के दो उपचार हैं—एक दवाई और दूसरा फिजियोथैरेपी, और मुझे दवाई से अधिक विश्वास दूसरी तरफ है।" डॉक्टर ने कहा और मैं उसी ओर गयी, जिस ओर डॉक्टर का भी अधिक विश्वास था। वह उपचार हमारे शहर में गत तीन वर्ष से रूस से आये हुए डॉक्टर ही करते हैं। मेरे डॉक्टर ने रूसी डॉक्टरों के नाम परिचय-पत्र लिखकर मुझे दे दिया।

रोज सुबह एक निश्चित समय पर मैं जाती। वहाँ रोज वही चेहरे देखने को मिलते, जो मैंने पहले दिन देखे थे। एक बच्चा रोज बिजली लगते समय चीखकर रो पड़ता और एक नर्स रोज उसे कहती, "देखो बेटा, आज नहीं रोना, कल रोएँगे!" नर्स के प्रिय बोल किसी के रोने को रोज 'आज' से टालकर 'कल' पर डालने की कोशिश करते थे, और मैं रोज सोचती थी—काश, हमारे 'आज' रोने से पूरी तरह बचे रह सकते!

एक औरत रोज अपने बच्चे की सूखी हुई टाँग पर बिजली लगवाती थी। आए-दिन बच्चे की टाँग में गति आती जाती और उसकी माँ का मुँह पहले दिन से अधिक चमकता जाता।

धीरे-धीरे चेहरों की पहचान कुछ-कुछ जान-पहचान में बदलने लगी थी। चन्द शब्द एक-दूसरे का हाल-चाल पूछने तक भी पहुँच गए। चेहरों में एक चेहरा मलवा का था, कोई बिजली जितनी पीड़ा

को कम नहीं कर पाती। नर्स को वह रोज पंजाबी में कह देती कि उसकी पीड़ा उसी तरह है और इस पीड़ा से उसे सारी रात नींद नहीं आई। नर्स उसकी बात को अंग्रेजी में डॉक्टर से कह देती। डॉक्टर परेशान होती। उसके हाथों में रोज निकली को 'एग्ज़ैमिन' करती, नींद की दवाई बदलती। पर जितने दिनों से मैं देख रही थी, रोज दोहराए जाने वाले उसके एक ही वाक्य में से एक भी शब्द नहीं बदला था। नींद की किसी दवाई से उसे नींद कभी उधार तक नहीं दी और न उसकी पीड़ा में कमी हुई।

एक दिन कोई नर्स आसपास नहीं थी। मलका ने मुझे कहा कि मैं डॉक्टर से पूछूँ कि अगर उसे हिन्दी समझ आती हो, तो वह सीधे डॉक्टर के साथ बात कर सके। मेरे पूछने पर डॉक्टर ने बताया कि अभी उसे भारत में आए थोड़ा अरसा हुआ है। अभी तो अंग्रेजी भी उसकी जबान पर नहीं चढ़ी। हिन्दी का वह सिर्फ़ एक ही शब्द जानती है—'बूढ़ा दिल्ली'। 'ओल्ड डेल्ही' का स्वयं ही उसने हिन्दी में अनुवाद किया था, 'बूढ़ा दिल्ली'। डॉक्टर हँसती रही, और इस अनुवाद पर मुझे भी खुलकर हँसी आई।

मलका ने आज नर्स का स्थान मुझे देना चाहा। उसने कहा, "मुझे मालूम है कि मुझे आराम क्यों नहीं होता। आज मैं अपने रोग का असली कारण डॉक्टर को बताना चाहती हूँ। जो कुछ मैं बताऊँ, तुम डॉक्टर को समझा देना।"

डॉक्टर के पास अपने मरीजों का दुःख सुनने के लिए हमेशा समय होता था, और आज मैंने अपना समय मलका के सुपुर्द कर दिया था। मलका कहने लगी—

"देखा तो नहीं, पर सुना है कि कोई साँप ऐसा होता है, जो किसी को डस ले और अगर कोई उस साँप को मार दे, तो फिर उसकी साँपिन हर छः महीने के बाद उसी दिन, उसी क्षण, उस आदमी को डसने आती है। वह आदमी भले ही हज़ार प्रयत्न कर ले, रात-भर जागता रहे, दीपक जलाए रखे, शहर बदल ले, पर वह साँपिन जाने कैसे उसका पता

सूँघ लेती है और उसे कोई रोक नहीं पाता। कई लोग फिर इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि वे सारे बचाव छोड़ देते हैं। उस क्षण वे खाट पर बैठकर पैर पसार लेते हैं और साँपिन चुपचाप कहीं से निकल आती है। एक बार डसकर साँपिन वापस लौट जाती है। कहते हैं, वह आदमी विष का इतना अभ्यस्त हो जाता है कि डसने से मरता नहीं, यद्यपि उस डंक के आतंक से मुर्दे के समान हो जाता है। मेरी भी यही दशा है। मन के कई दिल-बहलावों के साथ मैं इस डंक से बचने की कोशिश करती रही हूँ। पर मेरा कोई भी प्रयत्न सफल नहीं रहा। हर रोज रात को जब मैं सोने लगती हूँ, एक भाग्य का साँप मेरे गिर्द आ जाता है। मैं चुपचाप अपना मन उसके आगे रख देती हूँ और वह अपना डंक मार लेता है। फिर सारी रात मुझे उसका आतंक सोने नहीं देता। 'सोनार-गल' या नींद की कोई अन्य दवाई मुझ पर कोई असर नहीं करती। शायद कभी कर भी न सके।"

मलका की कहानी किसी सवाल की मोहताज नहीं थी। मलका कहती जा रही थी—

"छोटी थी, कोई नौ-दस बरस की, जब एक रात मेरे पिता ने मेरी माँ का हाथ पकड़कर उसे अपने घर से निकाल दिया था। मैं अपनी माँ की टाँगों से लिपट गई थी, पर मेरे पिता ने मुझे बाँहों से खींचकर घर के भीतर कर लिया था और माँ को बाहर धकेलकर घर के द्वार बन्द कर लिये थे। पूरी बात मुझे मालूम नहीं थी, पर उस बात का अहसास मेरे मन में पूरा था। एक भयंकर दहशत मुझ पर छा गई थी।

"मेरे पिता अपने धर्म के एक बहुत बड़े प्रचारक थे, और पिछले कुछ बरसों से एक विधवा औरत को धर्म के साथ उनसे ऐसा प्रेम हो गया था कि वह अपने धर्म के प्रचारक की पूजा करने लग गई थी। रोज दोपहर को रोटी बनाकर वह सजी हुई थाली मेरे पिता के आगे रख देती और फिर जूठी थाली में जो कुछ बचता, कमरे के एक कोने में बैठकर खा लेती। रोज मेरी माँ द्वारा पकायी हुई रोटी उसी तरह रखी रह जाती थी, और मेरी माँ को इस बात पर जो रंज होता था,

यह मेरे पिता को पसन्द नहीं लगता था। मेरे पिता कहते थे, 'आदमी औरत को रोटी देता है, कपड़ा देता है, घर भी बना देता है, और जब तक यह घर भरा-पूरा देता है, औरत को किसी चीज का हक नहीं है।' और एक दिन मेरी माँ का यह रंज मेरे पिता को इतना बुरा लगा कि उन्होंने मेरी माँ का हाथ पकड़कर उसे घर से बाहर निकाल दिया। मेरी माँ एक गाँव में रहने वाली अपनी बहन के घर चली गई। कुछ महीनों के पश्चात् मेरे पिता ने उसे फिर अपने घर में वापस बुला लिया, पर उस दिन से न-जाने मेरे मन में कौनसी आग जलने लग गई थी और मैं सोचने लग गई थी कि औरत का कोई घर नहीं होता, औरत का जीवन सिर्फ आदमी के भरोसे पर होता है। अगर भाग्य से आदमी अच्छा हो तो औरत अपनी सारी उम्र ठीक तरह काट लेती है, पर उसके बिना'''। मैं जैसे-जैसे बड़ी होती गई, इस आग की तपिश मुझे चढ़ती गई। मेरी सोचने की अग्नि जलने लग गई। आदमी कमाता है, वह मकान बनाता है, पर किसी औरत के बिना उसका मकान घर नहीं बनता। औरत उस मकान को घर बनाती है। फिर क्यों औरत का उस घर पर अधिकार नहीं होता? जिस आदमी का जिस समय दिल करता है, वह औरत को बाँह से पकड़कर उस घर में से निकाल सकता है। और, जब मैं जवान हुई, इस आग की तपिश ने मुझसे कहा कि मैं कभी विवाह न करूँ। मैं कभी किसी आदमी के मकान को घर बनाने वाली भूल न करूँ। अगर एक घर बसाकर भी औरत का कोई घर नहीं होता, तो जो धोखा मेरी माँ के साथ हुआ और कितनी ही औरतों के साथ होता है, वह मेरे साथ तो न हो। पर औरत की हथेली पर धोखे में पड़ जाने वाली जो अमिट लकीर होती है, शायद उसे कोई नहीं मिटा सकता। मेरे माता-पिता जिस लड़के के साथ मेरी शादी करना चाहते थे, एक दिन उसने मुझे एकान्त में ले जाकर मेरे मन की बात पूछी, तो मैंने उसके आगे अपने मन की सारी बात खोल दी।

"आदमी भले ही बुरा हो, पर मैं आदमी की जाति को इस उलाहने से बचाना चाहता हूँ। मैं सारी दुनिया के बुरे आदमियों का बदला

चुकाऊँगा···और साथ ही यह भी कि अब मूल्य बदल गए हैं···नई सदी का आदमी एक औरत से वही मूल्य माँगेगा, जो वह स्वयं दे सकता हो।" और मेरे मन की आग की सारी चिनगारियाँ उसने विश्वास के ढक्कन से ढक ली।

"आज मेरी शादी को पन्द्रह बरस हो गए है। मुझे अभी तक उस ढक्कन में कोई दरार नही मिली थी। तसल्ली की एक भावना के साथ मैं जी रही थी। पर अब तीन महीने हुए हैं, अचानक वह ढक्कन उतर गया है, और मेरे मन की पुरानी आग फिर से भड़क उठी है। उसकी तपिश मुझसे झेली नहीं जाती। मुझे पता चला है, पिछले दस बरस से मेरे पति की एक रिश्तेदार लड़की उसकी रखैल है। पिछले दस बरस मैं जिस घर को अपना घर समझती रही, वह घर नही था, एक मकान था, जिसकी सारी ईंटें और सारा चूना सब जैसे एक बार ही मेरे सिर पर आ गिरा है।"

मेरा हाथ मलका के आँसुओ को नही पोछ सकता था। दुनिया का कोई भी हाथ उसके आँसुओ को नही पोछ सकता था। मैंने काँपते हाथों से सिर्फ अपने आँसू पोछे।

"विश्वास के जिस खिलौने से मैं खेलती रही थी, अचानक उसमें डंक लग गया है, साँप का डंक। और मैं उससे बचने का भले ही कोई उपाय सोच लूँ, यह मेरे गिर्द फुफकारता रहता है—और अब तो मैंने उपाय भी छोड़ दिए हैं, अपना मन उसके डंक के सुपुर्द कर दिया है।" मलका ने रुक-रुककर कहा।

जहाँ तक बना, मैंने मलका की कहानी का अनुवाद करके डॉक्टर को सुना दिया। डॉक्टर ने बिजली का इलाज बन्द कर दिया, और मन को ढाढ़स बँधाने वाली दवाइयों के नाम ढूँढने लग गई।

क्षण-भर पहले 'ओल्ड डेल्ही' के 'बूढ़ा दिल्ली' अनुवाद पर मैं हँस रही थी। अब वह हँसी एक पीड़ा में बदल गई। औरत के दुःख की पुरानी कहानी, मलका की माँ की कहानी और शायद उसकी माँ की भी कहानी। अब सदी चाहे कितनी नयी हो, बादलों की सदी, चाँद-

सितारों को ज्ञान लगाने लगी गई, पर औरत के जीवन के लिए अब भी नहीं सूझा है, यही मुझे मूल्य।...औरत के मानव मूल्यों का एक ही अनुवाद है—'समाज के कड़े मूल्य'। 'आदमी औरत को रोटी देता है, कपड़ा देता है, घर भी बना देता है, और जब वह यह सब-कुछ देता है, औरत को किसी हक का हक नहीं होता।'

मलका ने अपनी कहानी डॉक्टर तक पहुँचाने के लिए मुझे एक वर्ष का स्थान दिया था। आज मलका की कहानी लिखते समय भी मुझे अपना स्थान एक वर्ष से बढ़कर नहीं लग रहा। मेरे पास मलका के, हरेक औरत में जीती मलका के दुःख का उपचार तो कोई नहीं है। सिर्फ एक विश्वास है — समय का कोई नया मूल्य, कोई डॉक्टर, मलका की इस पीड़ा का भी दवा अवश्य ढूंढ निकालेगा।

मुस्कराहट का पंछी

सौली को लगा, जैसे आज उसके पैरों तले धरती बहुत मुलायम हो गई हो। बिवाई से फटी हुई अपनी एड़ियों पर जब उसने अपने शरीर का सारा बोझ डाला, तब भी उसको लगा, जैसे किसी ने उसके पैरों तले हथेलियों-सा कुछ मुलायम-मुलायम रख दिया हो।

फिर उसको खयाल आया कि कहीं आज वह रोज का रास्ता तो नहीं भूल गई थी—वह रास्ता जो ऊँची-ऊँची इमारतों के पिछवाड़े से बल खाता हुआ चटाइयों से बनी हुई खोलियों की बस्ती की ओर जाता था, और जिस पर कंकड़, पत्थर और काँच के टुकड़े बिखरे हुए थे। नहीं, वह रास्ता भूली नहीं थी, क्योंकि सामने ताड़ के पत्तों की छत वाली उसकी खोली उसको दिखाई देने लगी थी। सौली के होंठ चिर काल से एक खाली घोंसले की तरह थे, और आज उसको लगा, जैसे मुस्कराहट का पंछी कहीं से उड़ता-उड़ता आकर उसके होंठों के घोंसले में बैठ गया हो।

सौली ने अपनी खोली का दरवाजा खोला और भीतर घुसकर एक कोने में इस प्रकार खड़ी हो गई, जैसे वह खोली उसकी अपनी नहीं थी, और वह किसी अजनबी की खोली में आ गई थी। उसे जान पड़ा कि चाहे वह खोली उसकी अपनी थी या किसी और की, पर वह ग़लती से उस खोली में नहीं आयी थी। वह जान-बूझकर और सोच-समझकर उस खोली में आयी थी। और फिर उसको लगा कि आज वह उस खोली में न घर वालों की भाँति आयी थी, और न मेहमानों की भाँति।

आज तक उस खोली में चाँदों की तरह खाली थी। और अब वह एक कोने में पड़ी, सौली की उन चीज़ों को इस प्रकार देख रही थी, कि उनमें से कुछ उड़ा ले जाने के लिए कोई-सी [illegible] भी ताक थी।

उसे ध्यान पड़ा कि सौली के सामने के कोने में कोई चीज़ चमक रही है। उसने गौर से देखा। वहाँ दो आँखें उसकी ओर टुकुर-टुकुर देख रही थीं। सौली ने उन आँखों को पहचान लिया। वे दो आँखें उस मर्द की थीं, जिसके साथ उसका ब्याह हुआ था। सौली ने अपनी आँखें उससे दूर न हटाईं, बल्कि घूरकर उन आँखों की ओर देखा और कहा, "तुझे क्या हक है मेरी ओर इस प्रकार देखने का—तू जिसने जीते-जी मुझसे आँखें फेर लीं? मेरे पेट में तेरा बच्चा पल रहा था, जिस समय तू पड़ोसियों की एक जवान लड़की के साथ भाग गया था। तूने उस समय एक बार भी न सोचा कि मैं तेरे बाद किस तरह जिऊँगी, कहाँ से खाऊँगी, कहाँ से पहनूँगी, और तेरे बच्चे को कैसे पालूँगी?"

सौली की सांस सुलग उठी और वह जल्दी-जल्दी कहने लगी, "पाँच वर्ष मैं वह धोतियां पहनती रही हूँ, जिनको मैं एक तरफ़ से सीती थी तो वे दूसरी तरफ से फट जाती थीं। तूने तब कभी मेरी ओर नहीं देखा। और आज जब मैंने नयी खड़-खड़ करती धोती पहनी है, तो तू मेरी ओर टुकुर-टुकुर देख रहा है! ...और पाँच वर्ष मैं वह टूटी हुई चप्पलें घसीटती रही हूँ, जिनमें से मेरी एड़ियाँ हमेशा बाहर निकली रहती थीं, और रास्ते के कंकड़ मेरे पैरों का इंतजार करते रहते थे। और आज जब मैंने रबड़ की नयी चप्पलें पहनी हैं, जिनके कारण मुझे सारी ज़मीन कोमल लग रही है, तो तू मेरी ओर घूर-घूरकर देख रहा है! तुझे मेरी ओर ऐसे देखने का क्या हक है?"

सौली के होंठों पर बैठे हुए मुस्कराहट के पंछी ने इस प्रकार पंख फड़फड़ाये, जैसे वह सामने के कोने में चमकती हुई दोनों आँखों पर झपट पड़ेगा।

फिर सौली ने अपनी आँखें उस कोने से हटा लीं और खोली के दूसरे कोने की ओर देखा। उस कोने में भी सौली को लगा, जैसे कोई

चीज़ चमक रही हो। सौली ने ध्यान से देखा, और वे आँखें पहचान ली। वे दोनों आँखें वर्षों पूर्व मर चुके उसके बाप की आँखें थीं। सौली ने बड़े प्यार से उन आँखों की ओर देखा। और फिर वह नम्रता से कहने लगी, "बापू, मेरी ओर इस तरह न देख। मौत के पंजे ने जब तेरी गरदन को पकड़ लिया था, तो तूने चुपचाप अपनी साँस तोड़ दी थी। तब तूने कोई विरोध कहां किया था? आज जिन्दगी के पंजे ने मेरी गरदन को पकड़ लिया है। मैं भी चुपचाप अपनी साँस तोड़ रही हूँ। तू क्यों नहीं समझता कि अगर कोई मौत के पंजे से नहीं छूट सकता, तो जिन्दगी के पंजे से कैसे छूटेगा?

"... जिन्दगी का पंजा मौत के पंजे से भी ज्यादा मजबूत होता है, बापू!"

सौली ने झटपट अपनी आँखें उस कोने से हटा लीं। सौली को लगा कि उसके होठों के घोंसले में मुस्कराहट का पंछी इस प्रकार पर मार रहा है, जैसे अभी-अभी कहीं उड़ जाएगा।

सौली ने खोली के तीसरे कोने की ओर देखा। और उसको लगा जैसे वहाँ भी कोई चीज़ चमक रही थी। सौली ने एक दीर्घ निःश्वास खींचा। उसने उस कोने में चमकती हुई अपनी माँ की आँखें पहचान ली थीं—माँ की आँखें, जिन्हें छः महीने पहले उसने अपने हाथों से बंद किया था।

जैसे हरेक के मुँह से मुसीबत के समय 'माँ' निकल आता है, सौली के मुँह से भी उसी प्रकार निकल गया—"माँ!"

और फिर सौली के सारे शरीर में इस ममता वाले रिश्ते की एक कँपकँपी छिड़ गई। इस कँपकँपी में सौली का मन रो पड़ा। वह कहने लगी, "माँ, आज तू कैसे देख रही है मेरी ओर? तुझे तो अच्छी तरह मालूम है कि तू इस खोली में बैठकर मेरे बच्चे को खेलाती रहती थी, और मैं सारे दिन किसी के बरतन माँजती थी, किसी का फर्श पोंछती थी, किसी के कमरे धोती थी। फिर तू इस खोली से चली गई—इस दुनिया से चली गई। तब मैं अपने पुत्र को इस खोली में अकेले छोड़

जाती थी। और सारे दिन किसी के बरतन मांजती थी, किसी का फर्श पोंछती थी, किसी के कपड़े धोती थी। और जब सांझ को लौटती थी, तो मेरा पुत्र उलझनों में घिरा बैठा होता था। वह लोगों की चीजें गायब करने लगा था, मां! उसे किसी दिन पक्का चोर बन जाना था, मां!"

सीली रोने लगी और रोते-रोते कहने लगी, "वह सड़कों पर खड़ा होकर लोगों से पैसे मांगने लगा था। उसे…उसे एक भिखारी बन जाना था, मां!… मैंने और कुछ नहीं किया, बस उसकी जगह मैं खुद चोर बन गई हूं, मां! और अब मैं उसको चोर नहीं बनने दूंगी। उसकी जगह मैं खुद भिखारिन बन गई हूं, मां! और अब मैं उसको भिखारी नहीं बनने दूंगी।…"

सीली ने अपनी आंखें पोंछीं। और वह शांत स्वर में कहने लगी, "आज मैंने उसको स्कूल में दाखिल करा दिया है, माँ! अब मेरा बच्चा पढ़ेगा। आज मैंने उसको कापी और स्लेट ले दी है। और साथ ही आज मैंने उसको बिस्कुट और केला ले दिया है। आज वह जब स्कूल से आयेगा, तो वह सड़क पर लोगों से पैसे मांगने नहीं जायेगा। आज वह अपना सबक याद करेगा।

"और हाँ, सच, माँ, तुझे तो पता है कि कमेटी वाले हमें कितना तंग करते हैं! कई बार उन्होंने हमारी ये खोलियाँ गिरवा दीं। और जब वे गिरा-बिगाड़कर चले जाते थे, तो हम बेशर्मों की तरह फिर इन बाँसों को गाड़कर अपनी खोलियाँ बना लेते थे। इस बार वे सबको चेतावनी दे गए हैं कि दीवाली के बाद वे हम सबकी खोलियाँ गिराकर हमारे बाँस और चटाइयाँ भी उठा ले जाएँगे।…और, माँ, आज मैं यह अपनी खोली की चिंता भी ख़त्म कर आई हूँ। आज तो मैं सिर्फ़ इसमें से कुछ जरूरत की चीजें लेने आई हूँ। साहब ने मुझे क्वार्टर दे दिया है।"

सीली ने क्षण-भर के लिए चुप होकर, माँ की आँखों की ओर देखा। और उसे लगा, जैसे उसकी माँ अभी भी कुछ पूछ रही थी। सीली जल्दी

से कहने लगी, "वही साहब, जिसने मुझे यह नयी धोती दी है, और यह रबड़ की नयी चप्पलें। उसने मुझे पैसे भी दिये हैं, माँ।"

और सौली को याद आया कि आज स्कूल की फीस देकर और अपने बेटे के लिए कापी, स्लेट, केले और बिस्कुट खरीदकर भी उसके पास पैसे बचे हुए थे। उसने अपनी धोती के छोर को टटोला। एक–एक रुपये के तीन नोट और कुछ रेजगारी उसकी धोती के ठोक में बँधी हुई थी। और फिर सौली को लगा, जैसे उसकी माँ की आँखें पैसों की उस छोटी-सी गाँठ को बड़े गौर से देख रही हों। और सौली जल्दी से कहने लगी, "माँ, मुझे पता है कि तू दवा के अभाव में मर गई। वह अस्पताल, जो गरीबों से चवन्नी लेकर दवा देता है, वहाँ तो सारे दिन लड़े-लड़े बारी भी नहीं आती थी। और दूसरे डॉक्टर बहुत रुपये मांगते हैं।

"···तू कहती होगी कि 'आज तुझे पुत्र को स्कूल में दाखिल कराने के लिए पैसे मिल गए। तब तुझे माँ के लिए दवा लाने के लिए क्यों पैसे नहीं मिले?' इस बात से मैं लज्जित हूँ, माँ! ··अगर मैं तभी··· तभी···"

सौली की आँखें पुन भर आईं और वह माँ से कहने लगी, "यह साहब तो तब भी यह बात कहता था। पर मुझे उसकी साँस से शराब की तेज बू आती थी। और यह बात भी मुझे उस बू जैसी बुरी लगती थी।···पर कल···कल मैं साँस रोककर शराब की सारी बू सह गई, और यह बात भी ··यह बात भी सह गई। ··"

खोली के तीनों कोनों से सौली ने मुँह फेर लिया। चौथे कोने में वह स्वयं खड़ी हुई थी। आँसू बह-बहकर उसके होंठों को भिगोते जा रहे थे। उसने आँखें पोंछी, फिर गाल पोंछे, और फिर होंठ पोंछे। और उसे लगा, जैसे उसके होंठों के घोंसले से मुस्कराहट का पंछी कहीं उड़ गया हो। सौली ने घबराकर खोली के दरवाजे में से बाहर देखा। बाहर उसका बेटा हाथ में स्लेट और कापी लिये, स्कूल से आ रहा था।

"माँ!"

"हाँ, मेरे बेटे !"

"मैं पढ़कर आया हूँ।"

"हाँ, मेरे लाल !"

"अब मैं रोज स्कूल जाया करूँगा।"

"हाँ, मेरे बच्चे !"

"माँ, तू मुझे रोज बिस्कुट देगी ?"

"हाँ, मेरे लाल !"

"केला भी ?"

"हाँ।"

"अब मैं किसी की चीज नहीं उठाऊँगा, माँ, और किसी से पैसा नहीं माँगूँगा।"

सोली ने देखा, बच्चे के होंठों पर मुस्कराहट का पंछी बैठा हुआ था। उसने डरकर, काँपकर आकाश की ओर हाथ जोड़े। 'हे भगवान्, मेरे बच्चे के होंठों पर से मुस्कराहट का पंछी कभी न उड़े—हे भगवान्, कभी न उड़े !...'